भूमिका ।

प्रियवरो, बहुत से लोग हिन्दुओं को गऊ का सन्मान करते देख बार हँसी करते हैं कि देखो हिन्दु लोग एक पशु का कितना सन्मान करते हैं यहां तक कि इसकी रक्षा के लिये अपना प्राण देने को तयार हो जाते हैं, हे हिन्दू भाईयो यह उनका कसूर नही है क्योंकि हीरे की कदर जौहरी ही जानता है दूसरा उसको पत्थरही जानता है ऐसेही विदेशी लोग गऊ माता के गुण न जानकर उसको एक पशु जानते हैं इसलिये हम उन भाईयों को गऊ माता के गुण जनाते हैं कि देखो ईश्वर ने इसमें क्या क्या गुण भरे हैं यदि यह न हो तो मनुष्यों का एक कार्य्य भी न हो सकता अर्थात् गाय बैलों की मनुष्यों को ऐसी जरूरत है जैसे सूर्य्य चांद और आब हवा की है भला वह कौन मनुष्य है जिसने उसके दूध घृत और बैलों के जोते हुये अन्न से अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर को न पाला हो। याद रक्खो कि जब तक यह गऊ

है तभी तक धर्मीयों का धर्म दीनदारों का दीन पण्डितों की पण्डिताई दानी की दानाई फिलासफरों का इल्म-फलसफा मंतकों की तकरीर व दलील, दूकानदारों की दूकानदारी साहूकारों की साहूकारी सौदागरों की सौदागरी कारीगरों की कारीगरी वकीलों की वकालत मुखतारों की मुखतारी थानेदारों की थानेदारी कलिक्टरों की कलिक्टरी राजों का राज्य शहनशाहों का खजाना यह सब गाय बैलोंही के प्रताप से है। फिर जब गाय न रहेगी तो न भारत देश के प्रजा का धर्म रह सकता और न भारत देश की प्रजा जीती रह सकती है। इस लिये आप लोगों से प्रार्थना है कि गाय की रक्षा का उपाय शीघ्र करो जिससे यह जघन्य कार्य्य भारत से उठजाय और राजा प्रजा दोनों आनन्द से अपनी आयु व्यतीत करें। देखिये हम आप लोगों को प्रत्येक धर्म से गऊ माता की रक्षा करने का प्रमाण देते हैं, कृपा करके इस छोटे से ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ जाइये और गोरक्षा का पुण्य पाइये। जगतनारायण।

गोरक्षाप्रकाश।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥
इन्द्रो विश्वस्य राजतिशन्नोऽस्तुद्विपदेशं चतुष्पदे
य० अ० ३६७ म०—८.

भारतवासियों से गोसेवक पं० जगतनारायण-
की पुकार।

चौपाई।

सुनो सुनो प्रिय देशहितैषी। पड़ी विपत भारत पर कैसी॥
पड़े देश में काल दुकाला। अन्न बिना कस हुआ बिहाला॥
हैजा कोढ हुआ अब जारी। कफ पितु वायु रोग अति भारी॥
तापतिली औ शूल जलंधर। नैन रोग अरु मृगी भगंधर॥
अतीसार अरु आंवमरोडा। खांसी दमा दाद अरु फोडा॥
भूत पिशाच शीतलामाई। ग्रसित सकलजन घर घर छाई॥
कौन पाप भारत अस कीन्हा। जिहि कारण ईश्वर दुखदीन्हा॥
सोच समझ हम यह पहचाना। गोबध पाप हिन्द पर छाना
निज अपराध गऊ दुख होता। यहि कारण भारत अब रोता॥

जो तुम चाहो कुल कल्याना। शीघ्र बचाओ गउ के प्राना।
करो बेग गौ हेत उपाई। याते दुख भारत की जाई ॥
यही हेत मख कथा बनाई। इतें हमें नहि लोग लुगाई ॥
ऋषी मुनी यश कीन परीक्षा। परउपकारी गउ को दीक्षा॥
बढ़े खेत अरु बनिज ब्योपारा। याते सुखी होय संसारा ॥
खाय दूध घृत होइ अनन्दा। सबी रोग भागें दुखदन्दा ॥
गऊ हेत रघुवंश कुमारा। रामकृष्ण भये जग अवतारा ॥
लीन मुकुट अरु कामर काली। याही हेत भये बनमाली।
बन २ डोलें गाय चराई। महाकष्ट भोगें इन ताई ॥
दुष्ट असुर दल कीन पछारा। कंसादिक दुष्टन को मारा ॥
परसराम ने लियो कुठारा। गौ बाधक सबही को मारा ॥
बापी कूप और बन मन्दर। रक्षा हेत रचे अति सुन्दर ॥
श्री गुरुनानक ग्रन्थ बनाये। गौकी महिमा गाय सुनाये ॥
श्रीगोविन्दसिंह यवन् नसाये। गोरक्षा से गुरू कहाये ॥
श्रीरणजीत सेवाजी सूरा। गौवधिकन पर अति अकहरा ॥
दयानन्द कीनी उपकारा। गोकरुणानिधि ग्रंथ प्रचारा ॥
हरिश्चन्द्र अति कोमल बानी। गोमहिमा की कथा बखानी
भारतवर्ष के लोग लुगाई। गउ माता पर रहें सहाई ॥
राजा प्रजा कियो अति आदर। सो गौ को अब होत अनादर।
जाकी कथा वेद ने गाई। ताहि कि मारें अधम कसाई ॥
थर २ कांपत अति अकुलाती। शीघ्र करो रक्षा समझाती॥

सो भारत अब धरे न ध्याना। इनके सन्मुख जात प्राना॥
या अवसर बिपता अति भारी। निरअपराध लात हैं मारी॥
तुम ही हिन्दू शीघ्र बचाओ। दुष्ट खलन से याहि छुड़ाओ॥
सुनो बीर अब देर न लाओ। महरानी को पत्र पठाओ॥
विप्रवश अति चतुर सुजाना। गउ पर दया करो धरि ध्याना॥
तुम दोनों इक बंश कहाते। लाज न आवत गऊ कटाते॥
सुनो बात अब देर न लाओ। दुष्ट खलन से याहि बचाओ॥
आलस दूर करो तन केरो। करि उपाय गौ बिपत निबेरो॥
कर परयटन करो उपदेशा। नगर २ अरु ग्राम बिदेशा॥
घर २ बनवाओ गोशाला। दुष्ट खलन का हो मुह काला॥
क्षत्रियकुलभूषण सुनु मेरी। गोरक्षा में करो न देरी॥
सूर्य्य चन्द्रवंशी सब राजा। करत रहे गौअन हित काजा॥
तुमरे कुल की येही बड़ाई। गऊ बिपत से सदा छोड़ाई॥
देखो निजकुल हृदय बिचारी। क्यों अब देर करो अति भारी॥
वैश्यवंशअवतंश सुजाना। गौअन हेत करो अब ध्याना॥
तुमरो धर्म्म यही है भ्राता। गउ पालन यह बेद बताता॥
सो तुम ध्यान करो अब भाई। जाते बधे न गऊ कसाई॥
गऊ हेत इक सभा रचाओ। चन्दा कर गोगृह बनवाओ॥
शूद्रवर्ग सुनिये मन लाई। दया करो अब गो पर भाई॥
पञ्च जोर इक सभा कराओ। सब से हस्ताक्षर करवाओ॥
यवन हाथ जो बेंचे गाई। उसको तजैं बिरादर भाई॥

जो तुम ऐसी करो प्रतिज्ञा । यचन रहे वेदन की आज्ञा ।
शीघ्र उठो अब देर न लाओ । याते मन भायत फल पाओ॥

कृपा करके एक बेर तो पढ़िये, सुनाइये, सुनिये, और समझिये, क्या अब भी हमलोगों को यह ईर्षा नहीं आती और शर्म नहीं आती, धिक्कार है । हमको और हमारे "हम" धन को आज तक सब कहते आये हैं कि गऊ के समान कोई दीन नहीं है परन्तु न जाने हमलोग अपने घमण्ड के कारण उन दीन गाय बैलों की ओर देखते तक नहीं । हाय । क्या अब तक भी हमलोगों के दिल में ये बातें न उतरेंगी । जो कि हमारे पूर्वजों व अन्य लोगों ने कोई सुख कोई दुःख कारी समय प्रत्यक्ष दिखानेवाली की हैं, जिनको कि हमलोग इन्हीं अंग्रेजों के सुराज्य शिक्षा से जान कर उनके भागी होते हैं और प्रसंग से दुर्बलता के कारण उनके वचनों को सहना भी भारी समझते हैं ?क्या अब भी हमलोगों का मौन कभी हम को 'तुम कौन' ऐसा नहीं कहलावेगा, क्यों हमारे धर्म ने इतना सतएव प्रतिष्ठित "आर्य" नाम पाया था ? क्यों हम उसकी प्रतिष्ठा भूल गये, वह जो श्मशानवास के अनन्तर भी हमारा साथ नहीं छोड़ता क्यों हम को इतना दीन और निर्लज्ज कर चुका, हम भी क्यों वृथा पागल के समान उसका पीछा खिंचेही जाते हैं, क्यों यह हमारा अकेले का न बना रहा ।

हे अभिमानियों वा भाइयो।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः धर्म्म की गति कितनी सूक्ष्म है, और धर्म्म के सिवाय मरण के अनन्तर मोक्ष देनेवाला कोई नहीं है। यह सब कोई जानते हैं उसमें भी औरों का धर्म्म यद्यपि अभी तक जैसा तैसा वृद्धि परही है, परन्तु बड़े सोच का विषय है कि हमलोगों के अनैक्य से हमारा धर्म दिन २ घटता जाता है और इसी कारण से इसकी प्रतिष्ठा इतनी घट गई कि आज ८०० वर्ष से हमारी प्रभुता करनेवाले जो यवन, उनका बचन हर बात में हम से अधिक सत्कार से बढ़ने लगा। और हमलोगों के धर्म्म वा न्याय की रीति पर हमरा काम ध्यान रहने से सब रीति से दुर्बल हमलोगों की हर बात में तिरस्कार होने लगे। बराबर एक न एक मुकद्दमा हिन्दू और यवनों में हुआही करता है जिसका फल हिन्दुओं को कैद, जुर्माना वा धिक्कार आदिही मिला। होते २ अब यवनों का बल इतना बढ़ गया कि अब वे कोई बात कैसी भी धर्म्म विरुद्ध हो, बेधड़क करही डालते हैं। कारण उन्हें यह पूरा निश्चय हो गया है कि हम चाहैं जैसे नगे नाचे तौभी हमारीही जीत होगी। हमलोगों का बल तभी नष्ट से हुआ है जब कि हमारे पूर्वजनों के हाथों से हमारी प्रभुता अन्यदेशनिवासियों के हाथ में गई। यद्यपि

श्रीमती भारतेश्वरी की विजय पताका और न्याय शरणी हमारे दुःख को सुन कर यथार्थ रीति से मिटानेवाली है तथापि कितने राजकर्मचारी इसका ध्यान नहीं रखते, इस लिये ऐसे दुखित लेख द्वारा अपने धर्म के अनुरोध से सर्कार से निवेदन किये बिना रहा नहीं जाता। इसका उपाय भी तो सर्कार के हाथ है हे हिन्दूधर्मावलम्बियो! यदि तुम सत्ये धर्म पर आरूढ़ हो और अपनी धर्म या जननी रूपी गौ को पूज्य मानते हो तो इसका निवेदन रूपी उपाय शीघ्र करो। अपनी मण्डली या सभा से एक २ निवेदनपत्र श्रीमान् महामान्य मार्क्विस आफ़ डफरिन रा जप्रतिनिधि के नाम से शीघ्र भेजो। नहीं तो हैदराबाद, भागलपूर, बहावलपूर, मिर्जापूर, मुलतान, दिल्ली, आगरा इत्यादि में गोवध हुआ और यहां के हिन्दू मुंह देखते रहे, वैसे कभी तुम्हारे ऊपर भी यह प्रसंग आवेगा और तुम लोगों को भी मानसिक खेद सहना होगा हे नृपतिवरो! यद्यपि आपलोग सर्वदा लोग वार्ता को सावधान चित्त से कभी नहीं सुनते तथापि इस प्रार्थना के विषय में वैसे न हो जाइये—हे पण्डितवरो, आपलोग केवल पुस्तकादि अवलो कन श्रवण पठन में ही अपना काल बिताते हैं परन्तु इधर भी कुछ काल अवश्य आप देवेंगे, ऐसी आशा है। हे ध निको, अपने धन के साथ आपलोग भी शीघ्र जागिये, ऐसे

विषय में सोना अच्छा नहीं। देखो तुम्हारा सुवर्ण धर्म अब लोहा बन रहा है. हे सार्वभिक सभासदो,यद्यपि यह काम सर्व सम्मत का है तथापि प्रत्येक को इसका यत्न करना चाहिये. सोती हुई अपनी सभाओं को खड़ी करो। हे निरुद्योगियो यही तुम्हारे उद्योग के प्रारम्भ करने का अच्छा मुहूर्त है इसलिये अब भी दयालु अंग्रेज सर्कार प्रतिनिधि बड़े लाट साहब के पास अपनी वा अपने धर्म्म की आर्तध्वनि पहुँचाने में कसर न करो—हे सत्कर्म्म प्रवृत्ति दुष्कर्मनिवृत्ति सूचको,पत्र सम्पादको, यद्यपि तुमलोगों का कण्ठ इन्हीं कामों में चिल्लाते २ बैठ गया और हस्त लिखते २ थकित हो गयातथापि इस समय फिर भी इस धर्म्म-कृत्य के हेतु अपने धर्मानुसार तुमको ही केवल नहीं किन्तु तुम्हारे पाठकों को भी चिल्लाना और रीति से सदुपाय जताना पड़ेगा। हे अक्षरशत्रुओ! इस बहाने से तो भी तुम पढ़ने का अभ्यास करो और सब के मित्र बनो—हे भारत वासियो! चाहे जिस रीति से आपस में एक देशनिवासीत्व के कारण बंधुत्व को न तोडो पर गाय के लिये तन, मन, धन से तैयार हो—हे राजकर्म्मचारियो, आप भी ऐसे २ अपराधों के यथार्थ निर्णय पर सूक्ष्म दृष्टि दिया करो, तो एकतर्फीही बातें सुनकर वा देखकर हमलोगों को इतना दुःख सहना न पड़ेगा और आप के विपरीत होकर कारागृह

राजदण्ड न भुगतना होगा — हे महामान्य गवर्नर जेनरल महाशय, आप के शुभागमन का आनन्द और इनता के शोक का अनुभव तो हमलोग लेही चुके अब कार्य्यसरणी की शिक्षा जो बाकी है उसकी भी आशा है कि जन्म भर हमलोग आप की पूर्व प्रतिज्ञाओं के अनुसार से न भूलेंगे। और यह निश्चय है कि यह इतिहास द्वारा भी आपके सत्यकीर्त्तिकी का सदा स्मरण देगी — हे भारतचक्रवर्त्तिनी राजराजेश्वरी माता जब अपने भारतवासियों तक भी हम अपनी पुकार नहीं पहुँचा सके, तो तुम तक कैसे जायगी? हे परमेश्वर इन सब के उपायों को सुफल करने के लिये तुम भी कमर बाँधो और सब के हृदय को गोरक्षा की ओर लगाओ।

(समीक्षक) गोवध से तुम्हारी क्या हानि है जो गोरक्षा करो गोरक्षा करो ऐसा पुकार रहे हो (गोसेवक) गोवध से हमारे धर्म्म और देश की हानि है (समीक्षक) गोवध से तुम्हारे धर्म्म की क्या हानि है (गोसेवक) आपने तो यह बात कही कि एक मनुष्य ने किसी बालक से पूछा कि यदि पेड़ की जड़ काट दी जाये तो उसकी शाखा की क्या हानि है तब उस बालक ने उस मनुष्य की ओर देखकर कहा कि आप इतने बड़े हो गये यह भी नहीं जानते कि—

"मूलं नास्ति कुतः शाखा"

अर्थात् जिस पेड की जडही काट दी जावे तो उसकी शाखा कैसे रह सकती है सो आपकी बात है कि आप इतने बडे विद्यावान होकर पूछते हैं कि गोवध से तुम्हारे धर्म की क्या हानि है क्या आप नहीं जानते कि गऊही हिन्दूधर्म की जड है (स) ऐसा कहां लिखा है कि गऊ हिन्दूधर्म की जड है ? (गौ) ज़रा आप भागवत १० स्कन्द अध्याय ४ श्लोक ३९ को देखिये ।

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।
तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥

अर्थ—समस्त देवताओं के मूल विष्णु है और विष्णु का मूल जड सनातनधर्म की जड वेद गऊ ब्राह्मण, तप तथा दक्षिणा सहित यज्ञ है—(स) इस श्लोक से तो केवल गऊही नहीं ठहरी परन्तु वेद ब्राह्मण तप यज्ञ भी ठहरे (गो) भाई वेद ब्राह्मण तप यज्ञ की भी जड गऊही है (स) कैसे ? (गौ) देखिये ।

अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ।
पावनं सर्वभूतानां रक्षन्ति च वहन्ति च ॥

अग्निपुराणे शाल्यायुर्वेदे २९१ अध्याय. ।

अर्थ—गऊ के पुत्रों से अन्न होता है और गऊही से देवताओं को हवि मिलता है और गऊही के पंचगव्य से

लोग पावन पवित्र होते हैं अर्थात् गऊही सब की रक्षक है देखो पय दूध घृत खाये बिना न तो ब्राह्मण वेद पढ़ सक्ते हैं और न गऊ के घृत गोबर बिना यज्ञ हो सकता है और न गऊ के पंचगव्य बिना कोई तप कर सक्ता है इस वास्ते परमेश्वर ने यज्ञादि कर्मों की जड़ गऊही को जान कर क्षीरसागर से उत्पन्न करके ब्राह्मणों को दी थी (स) ऐसा कहां लिखा है? (गो) देखो भागवत स्कन्द ८ अध्याय ८ श्लोक १ में लिखा है।

पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः।
ममंथुस्तरसा सिंधुं हविर्धानी ततोऽभवत्॥ १॥
तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः।
यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप॥२॥

अर्थ--श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजा जब महादेवजी ने विष पियो तब प्रसन्न भये देवता और दानव ते फिर समुद्र मथत भये ताते गऊ निकलती भई (१) अग्निहोत्र को सिद्ध करनेवाली जो गऊ ताको ब्रह्मवादी जो ऋषिश्वर ते ग्रहण करते भये ब्रह्मलोकों को प्राप्त करे यज्ञ ताको संबधी पवित्र जो हवि ताके लिये ग्रहण कीनी—देखो गऊ सब की जड़ है या नहीं? (स) क्या एकही गऊ उत्पन्न की थी? (गो) एक नहीं उत्पन्न की थी (स) ऐसा कहां लिखा है? (गो) देखो भविष्यतपुराण में।

क्षीरोदतोयसंभूता या पुरामृतमन्थने
पंचगावः शुभाः पार्थ सर्वलोकस्य मातरः।
नन्दासुभद्रासुरभीसुशीलाबहुलाऋपि॥
एता लोकोपकाराय लोकानां तर्पणाय च॥

अर्थ—परमेश्वर ने संसार के उपकार के लिये क्षीर समुद्र मथन कर पांच गाय उत्पन्न कीं। नन्दा १ सुभद्रा २ सुरभी ३ सुशीला ४ बहुला ५ और यह पांचों गाय पांच ऋषियों को बांट दीं (स) किस ऋषि को कौन २ गाय दी? (गो) देखो भविष्यतपुराण को।

जमदग्निभरद्वाजवसिष्ठात्रिसगौतमाः।
जगृहुः कामदाः पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्तदा॥

अर्थात्-नन्दा गाय जमदग्नि को सुभद्रा भारद्वाज को सुरभी वसिष्ट को सुशीला अत्रि को बहुला गौतम को दी (स) इन्हीं को गज क्यों दीं (गो) यह ब्राह्मण थे इनको गज देने का कारण यह था कि वे वनों में रहते थे इनको यज्ञादि कर्म करने और भोजनादि का कष्ट होता था इसलिये परमेश्वर ने इनको गाय दीं कि यह उनके घृत से यज्ञ करें और उनके दुग्धादि का भोजन भी करें अर्थात परमेश्वर की ब्राह्मण को आज्ञा है कि गो दुग्ध पान करें वेदादिशास्त्रों को पढ़ें पढावें (स) क्षत्री और सुक्

खाकर ब्राह्मण वेदादि शास्त्रों को नहीं पढ़ सकते थे ? (गो) भोजन निर्वाह तो कर सकते थे, परन्तु वेदादि शास्त्र नहीं पढ़ सकते थे (स) क्यों नहीं पढ़ सकते थे ? (गो) इसका कारण यह है कि भोजन अनुकूल बुद्धि हो जाती है (स) ऐसा कहां लिखा है कि भोजन अनुकूल बुद्धि हो जाती है ? (गो) देखो गीता के १७ अध्याय के ७ श्लोक में भगवान कहते हैं—

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।

अर्थ - हे अर्जुन सात्विक आहारादिकों के सेवन से सात्वकी बुद्धि होती है (स) सात्वकी बुद्धि से क्या लाभ है (गो) सात्वकी अहार से स्मृति होती है (स) ऐसा कहां लिखा है ? (गो) देखो छान्दोग्य उपनिषद् में —

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

अर्थात् शुद्ध अहार से सत्वगुणों की शुद्धि होती है और सत्व की शुद्धि से निश्चय स्मृति होती है इस वास्ते शुद्ध अहार करना चाहिये —(स) तो शुद्ध सात्वकी अहार कौन हैं ? (गो) देखो गीता के १७ अध्याय के ८ श्लोक में लिखा है—

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः।
रसाःस्निग्धाःस्थिराहृद्याआहारासात्विकप्रियाः॥

अर्थ—आयुष्य, हुशियारी, वल, आरोग्य, सुख और प्रीति इनको वढ़ानेवाला और मधुरादि रसयुक्त स्निग्ध तरी वहुत काल रहने और देखने में सुन्दर ऐसा आहार सात्विकी जनों को प्रिय है (स) तो ऐसी कौन वस्तु है ? (गो) गो दुग्ध और गो घृत (स) ऐसा कहां लिखा है कि गो दुग्ध और गो घृतही सात्विकी भोजन है ? (गो) देखो जो गुण सात्विकी भोजन के ऊपर कहे हैं वे सब इसी में पाये जाते हैं (स) बताइये (गो) देखो हारीत संहिता में ऋषि मुनी लिखते हैं—

गव्यं पवित्रं च रसायनं च
पथ्यं च हृद्यं वलपुष्टिदं स्यात् ।
आयुःप्रदं रक्तविकारपित्ता-
त्रिदोषहृद्रोगविषापहं स्यात् ॥

अर्थ—गऊ का दूध पवित्र है औ ज्वर व्याधिनाशक है और हृदय को पवित्र करनेवाला है और वल को पुष्ट करनेवाला है आयु को वढ़ानेवाला है, और रक्त संबंधी रोगों का नाशक है और पित्त को नाश करता है हृद्रोग का नाशक है (स) तो क्या केवल रोज दुग्धही पान करना चाहिये? (गो) यदि और खाने की रुची हो तो दूध में कुछ अन्न मिलाकर खीर वना कर खाये या दूध भात खाये (स)

क्या खीर में सात्विक गुण पाये जाते हैं? (गो) जी हां (म) बताइये (गो) देखो वैद्यकवाले लिखते हैं—

क्षीरिका दुर्जरा बल्या धातुपुष्टिप्रदा गुरुः।
विष्टम्भिनी हरत्पित्तरक्तपित्ताग्निमारुतान् ॥

अर्थ—खीर जो है सो गुप्त है और धातु पुष्टकारक है और भारी है (म) क्यों जी खीर के बिना और कुछ न खाय? (गो) अमृत को छोड़कर और क्या पत्थर खायेगा (म) क्या खीर का भोजन अमृत है? (गो) जी हां (म) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो—

अमृतं शिशिरे वन्हिरमृतं बालभाषणम् ।
अमृतं राज्यसन्मानमृतं क्षीरभोजनं ॥

अर्थ—जाड़े के समय में अग्नि अमृत है और वाणियों में बालक की वाणी अमृत है और सन्मानों में राजा का सन्मान अमृत है और भोजनों में खीर का भोजन अमृत है, अमृतही होने के कारण ब्राह्मणों को खीर प्रिय है (म) ऐसा कहां लिखा है कि ब्राह्मणों को खीर प्रिय है? (गो) देखो—

उपकारप्रियो विष्णुर्जलधाराप्रियः शिवः।
नमस्कारप्रियो भानुर्ब्राह्मणो मधुरप्रियः ॥

अर्थ—उपकार करना विष्णु को प्रिय है और जल धारा शिवजी को और नमस्कार सूर्य को प्रिय है और ब्राह्मणों को मधुर अर्थात् दुग्ध भोजन प्रिय है (स) मधुर तो मीठे का नाम है (गो) दूध और ऐसा और कौन मीठा है जो उत्पन्न होतेही माता के स्तन में परमेश्वर भेजता है (२) दूध खाली मनुष्य कितनाही पी जा सकता है परन्तु मीठा नहीं खाया जासक्ता फिर मीठे में जब दूध घृत पड़ता है तब उस्से कई प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बन जाते हैं परन्तु खाली मीठे से नहीं बनते इससे मधुर दुग्धही है। दूसरे बिना गोबर और घृत के कोई यज्ञादि कर्म्म नहीं हो सक्ता है (स) यज्ञ में गोबर की क्या जरूरत है? (गो) बिना गोबर के लीपे यज्ञादि कर्म्म होही नहीं सकते। (स) ऐसा कहा लिखा है (गो)? देखो—

अथातो गृह्यस्थालीपाकानाम्।

कर्मदर्भैं परिसमूह्य गोमयनो पलीप्य॥

अर्थ—यज्ञ स्थान में कुशा से झाड़ू दे पानी छिड़के और गोबर से लीपना करे (स) क्या यज्ञादि कर्म्म बहुत से हैं? (गो) जी हां। (स) कौन २ (गो) नित्य यज्ञ तो पांच हैं इनको सिवाय और भी हैं (स) नित्य यज्ञ कौन हैं? (गो) ऋषि यज्ञ, देव, भूत अतिथि पितृ यज्ञ पांच यज्ञ हैं (स) ऐसा कहां लिखा है? (गो) देखो मनुजी कहते हैं—

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
न्यज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥

अर्थ—ऋषि, देव, भूत, अतिथि, पितृ यज्ञ अर्थात् यह पांच महायज्ञ हैं, इनको यथाशक्ति नित्य करना चाहिये (स) ऋषियज्ञ किसे कहते हैं? (गो) ब्राह्मणों को गौ आदि दान से सत्कार करना उसको ऋषियज्ञ कहते हैं (स) ब्राह्मणों का गौ आदि दान से क्यों सत्कार करना चाहिये? (गो) यह सब वर्णों के गुरु हैं और विद्या पढ़ते पढ़ाते हैं इसलिये उनका सत्कार करना चाहिये (स) जो कोई पढ़े पढ़ाये उसका सत्कार करना चाहिये ब्राह्मणोंही का क्यों (गो) पढ़ने पढ़ाने का काम ब्राह्मणोंही का है औरों का नहीं इस वास्ते गौ आदि दान से ब्राह्मणोंही का सत्कार करना चाहिये (स) क्या औरों को मूर्ख रहने का अधिकार है जो आप कहते हैं कि पढ़ने पढ़ाने का अधिकार औरों को नहीं (गो) मूर्ख रहना तो किसी को भी नहीं चाहिये पढ़ने का अधिकार सभी को है परन्तु पढ़ाने का अधिकार ब्राह्मणों के सिवाय और किसी को नहीं (स) पढ़ाने का अधिकार औरों को क्यों नहीं (गो) यदि सब कोई पढ़ानेही लग जायेंगे तो परमेश्वर की परिपाटी टूट जायगी (स) परमेश्वर ने क्या परिपाटी है जो टूट जायगी (गो) परमेश्वर ने यह परिपाटी बाँधी है कि जिस अंग से जिस

को मैंने उत्पन्न किया है वह उसी अंग का काम करे (स) परमेश्वर ने कौन २ अङ्ग से किस२ को उत्पन्न किया है (गो) देखो यजुर्वेद के ३१ अध्याय के ११ मन्त्र में कहा है—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत॥

अर्थ—ब्राह्मण ईश्वर के मुख से, क्षत्रीय बाहु से, वैश्य उरु से और शूद्र पैर से उत्पन्न हुये हैं। अब देखिये कि मुख का काम पढ़ना पढ़ाना है और ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हुये हैं इस वास्ते ब्राह्मणों को पढ़ने पढ़ाने की आज्ञा दी (स) ऐसी कहा आज्ञा दी है (गो) देखो मनु जी कहते हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

अर्थ—ब्राह्मणो का पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना कराना दान लेना देना यह ६ कर्म हैं—(स) क्षत्री क्या करें (गो) क्षत्री बांह से उत्पन्न हुये हैं सो बांह का काम बीरता का है इस वास्ते उनको प्रजारक्षा की आज्ञा दी है देखो मनु जी कहते हैं—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रशक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

(ग) अर्थ – प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, विद्या पढ़ना यह क्षत्रियों का कर्म है (म) वैश्य (गो) वैश्य जिस अर्थात् जङ्घो से उत्पन्न हुये हैं और जङ्घो का काम है बैठना, अर्थात् वैश्य गद्दी पर बैठकर व्योपार करें देखो मनुजी लिखते हैं –

पशूनां रक्षणं-दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक् पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥

अर्थ – गौ आदि पशुओं का पालन करना, दान करना यज्ञ करना विद्या पढ़ना और व्योपार करना यह वैश्यों का कर्म है (स) और शूद्र का क्या कर्म है? (गो) शूद्रों की उत्पत्ति है पैर से, और पैर का काम चलना फिरना अर्थात् चल फिर कर ब्राह्मण क्षत्री वैश्यों की सेवा करें – देखो मनुजी कहते हैं –

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥

अर्थ – शूद्रों को योग्य है कि ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य की सेवा कर अपना निबाह करें यह परमेश्वर की व्यवस्था है अब उस विवस्था के अनुसार यदि ब्राह्मणों को गो आदि दान से सत्कार न किया जाय तो उनका कैसे निर्वाह हो सक्ता है? (स) विद्या भी पढ़ें और कुछ रोज-

कार भी करें? (गो) सिवाय विद्या पढ़ने पढ़ाने के और कुछ कार्य करने की आज्ञाही नहीं है। (स) ऐसा कहाँ लिखा है कि और कुछ कार्य न करें (गो) देखो मनुजी कहते हैं।

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथा तथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥

अर्थ वेद पठन पाठन के विरोधी सर्व कार्यों को त्याग दे किन्तु पठन पाठन के सिवाय (अर्थोपर्नादिहेति) से निवाह करके भी स्वधाय (पढ़ना) करे—आप देखिये ब्राह्मण को सिवाय पढने पढाने के और कोई आज्ञा नहीं है इस वास्ते उनका सत्कार करने को ऋषि यज्ञ कहते हैं (स) देवयज्ञ किसे कहते हैं? (गो) होम करना इसका नाम देवयज्ञ है देखो मनुजी कहते हैं—"होमो देवःयज्ञ" होम करना देवयज्ञ है (स) होम किसको कहते हैं (गो) सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धियुक्त वायु और जल में रोग २ से प्राणियों को दुःख और सुगन्धि वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है (स) चन्दनादि जिसको किसी को लगावे या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो अग्नि में डालके व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं। (गो) जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहां होम होता है वहां से दूर

देश में स्थित पुरुष की नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसेही दुर्गन्ध का भी। इतनेही में समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैलके वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है। (स) जब ऐसाही है तो केशर कस्तूरी सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धितवायु होकर सुखकारक होगी। (गो) उस सुगन्ध का यह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थवायु को बाहर निकाल कर शुद्धवायु को प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदकशक्ति नहीं है और अग्निही की सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है। दूसरे हवन करने से यह लाभ है कि इसके करने से समय २ पर वृष्टि होती है (स) ऐसा कहां लिखा है कि होम करने से वृष्टि होती है (गो) देखो मनुजी कहते हैं—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिं वृष्टेरन्नं ततः प्रजा॥

अर्थ—अग्नि में जो (घृतादि की) आहुति पड़ती है वह सूर्य के निकट पहुंचती है और सूर्य से जल बरसता है और जल से अन्न उपजता है उससे मनुष्य सन्तुष्ट होते हैं और देखो भगवान् गीता में लिखते हैं—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रिया रामो मोघं पार्थ स जीवति॥

अर्थ—ईश्वर से वेद, वेद से कर्म (यज्ञादि) कर्म से मेघ, मेघ से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से प्राणी पलते हैं—प्राणी फिर यज्ञ करते हैं यज्ञ से फिर मेघ होते हैं फिर करत है फिर होते हैं इसी प्रकार का चक्र ईश्वर ने मनुष्यों के पूरुषार्थ की सिद्धी के लिये रचा है—हे अर्जुन जो मनुष्य इस कर्म यज्ञ में वृत नहीं होते, सो पापी इस संसार में वृथाही जीते हैं, किन्तु इन्द्रियों के वस हो अपना नष्ट करते हैं और औरों का भी करते हैं—क्योंकि हवन न करना मानो संसार की नष्ट करना है इसी वास्ते हवन न करने वालों को वेद और मनुस्मृति में पुत्र हत्या का पापी लिखते हैं—(स) वेद और मनु में कहां लिखा है (गो) देखो—

"वीरहावा एषा देवानामवर्तियोऽग्निमुद्वासयते"

इति श्रुतिः

अर्थात् जो पुरुष नित्य हवन नहीं करता वेह वीरह त्यारा अर्थात् पुत्र हत्यारा है - ऐसेही मनुजी अध्याय ११ में लिखते हैं —

अग्निहोत्रमपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः।
चन्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्या समं हि तत्॥

अर्थ – अग्निहोत्र सायंकाल और प्रातःकाल को जो ब्राह्मण इच्छा से नहीं करता वह पुत्र हत्यारा होता है इस लिये वह चन्द्रायण व्रत करे तब पाप छूटता है इस वास्ते हवन नित्य करना लिखा है (स) नित्य करना कहां लिखा है (गो) देखो मनुजी अध्याय ३ में लिखते हैं —

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि।
दैवकर्मणि युक्तोहि बिभर्तीदं चराचरम्॥

अर्थ – वेद का पठन पाठन और हवन इनको जो पुरुष नित्य करता है सो इस चराचर जगत की धारणा करता है और अब देखिये यह कर्म हमारा गोवध के कारण नाश हो गया (सं) इसमें गऊ की क्या जरूरत है? (गो) गऊ के गोघृत को (स) क्या और पशुओं के घृत से यज्ञ नहीं होसक्ता है (गो) नहीं (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो अग्निपुराणे २९१ अध्या १६ श्लोक —

हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि।
ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमेषु योजिताः॥

अर्थ—मन्त्रों से गव्य को प्राय के देवता सन्तुष्ट होते हैं और किसी अन्य पशु के घृत से यज्ञ सिद्ध नहीं होता किन्तु केवल गऊही के घृत से होता है इसी वास्ते यज्ञ के निमित्त गोदान देने का वड़ा पुण्य लिखा है (स) भूतयज्ञ किसे कहते हैं और उस यज्ञ में गऊ की क्या ज़रूरत है (गो) भूतयज्ञ नाम है बलिवैश्व का देखो मनुजी कहते हैं

"बलिर्भौतो"

अर्थात् जो कुछ पदार्थ रसोई में बने उस को अग्नि में हवन करे और भोजन के प्रथम कुछ पशु पक्षियों को भी भोजन देवे उसको भूत यज्ञ कहते हैं (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो मनु जी कहते हैं।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥
शूनाश्च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणांच शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥

अर्थ—सर्व देवों के अर्थ पक जो पदार्थ है उसका विधि पूर्वक अग्नि में आहुती दे और इसके पश्चात् रसोई में से पशु पंछी अर्थात् कुत्ता पापी चांडाल पापरोगी कौवे, और चींटी को अन्न दें (स) रसोई तो दो बार बनती है तो क्या दोनों बार आहुती दे (गो) जो हां मनुजी कहते हैं।

सायंत्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिंहरेत् ।
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातर्विधीयते ॥

अर्थ—सायंकाल में सिद्ध हीग्रन्न सिद्ध करके बिना मन्त्र के बलि वैश्वदेव करे (स) जो न करे तो उसको क्या दोष ? (गो) जो बलि वैश्वदेव यज्ञ किये बिना भोजन करता है वह पाप का भोजन करता है (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो मनुजी कहते हैं

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥

अर्थ—जो पुरुष अपने लिये पाक (रसोई) करता है अर्थात् बलीवैश्वदेव विधि से देवतावों को नहीं देता वह पाप का भोजन करता है क्योंकि यज्ञ से शेष रहा जो अन्न है वह सत्पुरुषों का भोजन है देखो भगवान गीता में कहते हैं।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

अर्थ—यज्ञ का बचा अन्न भोजन कर मनुष्य सर्व पापों से छूट जाता है और जो पापअपनेही लिये भोजन बनाता है और बलिवैश्व नहीं करता है सो पापी पापही का भोजन करता है—किसी कवि ने भी कहा है।

जो बलिवैश्वदेव नहीं देहीं।
सो मलमूत्र उदर भर लेहीं॥

सो गोवध होने से आज हम लोग इस कवि के अर्थ नानुसार भोजन करते हैं (स) कैसे (गो) गोवध होने से अब दूध घृतादि पदार्थ कम हो गये अब अपनेही को भोजन नहीं मिलता तो बलि वैश्व देव कहां से करें इसे यह धर्म भी हमारा नाश हुआ (स) अतिथियज्ञ किसे कहते हैं? (गो) अतिथिपूजन को (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो मनुजी कहते हैं।

"नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्"

अर्थ–अतिथि जो मनुष्य हो उसका पूजन करना पूजन अर्थ यह है कि रसोई के समय उनको भोजन कराना येही अतिथिपूजन है (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो मनुजी कहते हैं।

संप्राप्तायत्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥

अर्थ–जिस समय अतिथि अपने घर से आवे तब यथा शक्ति सत्कार कर बिधिपूर्वक आसन दे अन्न जल देवे (स) पहले आप खावे कि पहले अतिथि को दे (ग) पहले अतिथि को भोजन कराले तब आप खावे (स) ऐसा कहां

लिखा है (गो) देखो मनुजी कहते हैं।

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत्।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे॥

अर्थ—पूर्वोक्त बलिवैश्वदेव करके पहले अतिथि को भोजन कराये फिर ब्रह्मचारी सन्यासी को भिक्षा दे तब आप भोजन करे सो अब आपही को खाने को नहीं मिलता तो अतिथि को कहां से दे, सो अब गोवध के कारण यह धर्म भी नाश हुआ (स) अच्छा पितृय यज्ञ किसेकहते हैं (गो) पितरों के श्राध तर्पण करने को पीतृय यज्ञ कहते हैं (स)ऐसा कहा लिखा है (ग) देखो मनुजी कहते हैं।

"पितृयज्ञस्तु तर्पणम्"

अर्थात पितरों का श्राद्ध करने को पितृीय यज्ञ कहते हैं सो पितृय यज्ञ भी विना गाय के नहीं होता है (स) कैसे (ग) प्रथम पितरों के लिये खीर का पिण्डा बनाया जाता है दूसरे ब्राह्मण भोजन और गऊदान उनके नाम से करना होता है (स) गोदान से पितरों को क्या फल होता है (गो) गोदान से पितृ बड़े प्रसन्न होते हैं (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो।

दीयमाना च गां दृष्ट्वा नृत्यन्ति प्रपितामहाः।
प्रीयन्ते ऋषयः सर्वे तुष्यामो देवतैः सह॥

अर्थ—जो कोई गोदान करता है उसके पित्र बड़ी प्रसन्नता से नाचते कूदते हैं और ऋषि देवताओं सहित प्रसन्न होते हैं (स) इसका क्या कारण है कि पित्र गोदान से प्रसन्न होते हैं (गो) बुरे कर्मवस यदि पितर नर्कगामी हुये हों तो वे गोदान से स्वर्ग को चले जाते हैं इसलिये यदि कोई उनके वंश का गोदान करता है तो वे खुश होते हैं कि अब हमारी इससे रिहाई होगी (स) ऐसा कहां लिखा है कि गोदान से पित्रों का पाप छूट जाता है और वे स्वर्ग को चले जाते हैं (गो) देखो आदित्यपुराणे।

गां ददामीहमित्येव वाचा पूयेत सर्वशः।
मातृकं पैतृकं चैव यच्चान्यद्दुष्कृतं भवेत्॥

माता पिता का क्षत पाप और सम्बन्धियों का जो पाप है सो गोदान से तुरंत नाश होजाता है।

"गोप्रदानं तारयते सप्तपूर्वान्नरास्तथा"

अर्थात्—गोदाता गऊदान से अपने ७ पूर्वजों को स्वर्ग पहुंचाता है—और देखो अङ्गिरा।

गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः।
सा हि तारयते पूर्वान्सप्तसप्त च सप्त च॥

अर्थ—वेदपाठी एकही ब्राह्मण को एकही गाय दान जो देता है वह गऊ वंश के साथ पीड़ित पूर्वजों को नर्क

से स्वर्ग पहुंचाती है, बस ब्राह्मणों को गोदान देना ये पितृ यज्ञ कहाता है और येही पञ्च यज्ञ हैं।

स्वाध्याये नार्चयेत् र्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि।
पितृन् श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा॥

अर्थ—वेद के पठन पाठन से ऋषियों का, होम से देवों का, श्राद्ध से पित्रों का, बलिवैश्व देव से भूतों का, अन्न से अतिथियों का यज्ञ होता है।

बस यही पांच यज्ञ हैं यह पांच यज्ञ गृहस्थों को नित्य करना चाहिये (स) नित्य क्यों करना चाहिये (गो) नित्य करने से गृहस्थी नित्य अनादिष्ट पापों से बचता है इस वास्ते नित्य करना कहा है (स) नित्य करने को कहां कहा है (गो) देखो मनुजी कहते हैं।

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्नहापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्नलिप्यते॥

अर्थ—इन पांच महायज्ञों को जो पुरुष नहीं त्यागता अर्थात् शक्ति के अनुसार नित्य करता है सो घर में वसता हुआ भी पूरुष नित्य के दोषों से बचता है (स) नित्य पाप कौन २ हैं (गो) देखो मनुजी लिखते हैं।

पञ्चसूना गृहस्थस्य चूल्हीपेषण्यु पुस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तुवाहयन्॥

अर्थ— चूल्ही, चक्की बुहारी ओखली जलस्थान यह पांच हिंसा के स्थान हैं अर्थात् इनसे गृहस्थियों को नित्य पाप लगते हैं (स) ऐसा कहां लिखा है कि इन पापों के लिये यह पंचयज्ञ करे (गो) देखो लिखा है।

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्चक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥

अर्थ—उन पांच पातकों को दूर करने के लिये गृहस्थियों को क्रम से पंच महायज्ञ करना चाहिये अब देखिये गोवध से यह नित्य कर्म भी हमारे नाश हो गये और हम इन पांच यज्ञों के न करने से पापी भी हो गये अब तप रहा सो भी गो बिना नहीं हो सकता (स) कैसे (गो) प्रथम तप करनेवाले को पंचगव्य से शरीर शुद्ध करने को शास्त्र कारों ने लिखा है (स) पंचगव्य किसे कहते हैं (गो) गोदुग्ध गोदही गोघृत गोमूत्र गोगोबर यह पंचगव्य हैं (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो।

गोमयं रोचना मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवां
षड ङ्गानि पवित्राणि यासां सिद्धि कराणि च॥

अर्थात् गऊ के ६ वस्तु पवित्र हैं गोबर, रोचन, मूत्र, दूध, दही, घृत और देखो। याज्ञवल्क्यः।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिःकुशोदकम्।
जाध्यपरेऽह्न्य पवसेत्कृच्छं सान्तपनं परम्॥

पराशर: गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पि: कुशोदकम्
निर्दिष्टं पञ्चगव्यन्तु प्रत्येकं कायशोधनम् ॥

दूसरे — तपस्वीयों को देवताओं के प्रसन्नता के लिये गऊ दान करना चाहिये (स) गऊदान से देवता क्यों प्रसन्न होते हैं (गो) जो वस्तु देवताओं को अति प्रिय हैं उन सब की उत्पत्ति गऊ ही से है इस वास्ते देवता गऊदान से अति प्रसन्न होते हैं (स) देवताओं को कौन वस्तु प्रिय है जिन की उत्पत्ति गऊ से है (गो) देखो शिव पुराण में लिखा है।

गोमयादुत्थित: श्रीमान्बिल्ववृक्ष: शिवप्रिय:
तत्रास्ते पद्महस्ता श्री: श्रीवृक्षस्तेन संस्मृत: ।
बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात् ॥

अर्थ — शिव जी को जो प्रिय बेलपत्र उसकी उत्पत्ति गोबर से है और विष्णु को जो प्रिय कमल उसकी उत्पत्ति गोबर से है और देवताओं को जो प्रिय गुगुल उसकी उत्पत्ति भी गऊही से है (२) शिवजी का जो अतिप्रिय बाहन उसकी भी उत्पत्ति गऊही से है।

यह मूर्ति देखो।

जय मृत्युञ्जय

विष्णु को तो ऐसी अति प्रिय गऊ है कि कोई कुटी भी कहे कि हे नाथ मैं गऊ हूं मेरा कष्ट दूर करो तुरन्त कर देते हैं जैसे पृथ्वी पर जब अति पाप होने लगा तो पृथ्वी अति दुखित हो गऊ बन कर क्षीर सागर में गई और भगवान से अपना दुःख कहा तो तुरन्त भगवान ने अवतार ले उसका कष्ट दूर किया (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो भागवत के १ सं० १ अध्याय १६ श्लोक।

भूमिर्दृप्त नृपव्याज दैत्यानी कशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणंययौ ॥
गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्नाक्रंदन्ती करुणंविभोः ।
उपस्थितांऽति के तस्मै व्यसनंस्वमवोचत ॥
ब्रह्मा तदुपधार्याऽथ सहदेवैस्तयासह ।
जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥
तत्र गत्वाजगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ।
पुरुषं पुरुष सूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥
गिरंसमाधौ गगनेसमीरितां निशम्य वेधास्त्रि-
दशानुवाचह ॥ गांपौरुषीं शृणुताऽमराः पुनर्वि-
धीयतामाशु तथैव गांचिरम् ।पुरैव पुंसाऽवधृ-
तोधराज्वरोभवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ॥

मयावदुर्व्यां भरमीश्वरेश्वर: स्वकालशक्त्या घपयंश्चरेद्‌ वि ॥

अर्थ - गर्वमंत दैत्या राक्षस की सेना के समूह सैकड़ सहस्र के भार से दुःखित हुई पृथ्वी ब्रह्मा जी के शरण जाती भई। पृथ्वी गौ को रूप धारण करके और रुदन करती हुई और करुणा जामें ऐसे ऐसे वचनों को कहती पुकारती ब्रह्मा के पास जाय के अपना संपूर्ण दुःख कहती भई, ब्रह्मा जी तब पृथ्वी को दुःख श्रवण करके देवताओं को संग ले के और पृथ्वी को संग लेके और शिव जी को संग ले क्षीर सागर के निकट जाते भये। और समुद्र के समीप जाय के जगत के नाथ संपूर्ण मनोरथ पूर्ण करने वाले ऐसे भगवान नारायण तिनके सहस्र शीर्षा पुरुषा इनको उस ध्यान ते स्तुति करते भये। ब्रह्मा जीने समाधि लगाई ता समय आकाशवाणी हुई ता वाणी को श्रवणकरि ब्रह्मा जी देवताओं से बोले हे देवताओं मोको ईश्वर की आज्ञा भई है तिसको तुम श्रवण करो, और श्रवण करि बैठे मत रहो शीघ्रही से करो। हमारी प्रार्थना से प्रथम परमेश्वर ने पृथ्वी को दुःख दूरि करनो विचारो है ? देखो देवताओं के दुख का कुछ विचार नहीं किया परन्तु पृथ्वी का दुःख प्रथम दूर करना विचारा क्योंकि वह गऊ बन के आई थी।

फिर रामायण को देखो तुलसीदास जी भी कहते हैं

कि भगवान का अवतार केवल गऊ के लिये होता है।

गोद्विजदेव सन्त हितकारी ।
कृपासिन्धु मानुष्य तन धारी ॥
विप्रधेनु सुरसन्तहित लीन्ह मनुज अवतार ॥

देखिये प्रथम गऊ कोही कहा है—फिर देखो जब विश्वामित्र जीने श्रीरामचन्द्र जी से यह कहा—

एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणां ।
गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमां ॥

अर्थ—हे रामचन्द्र जी गौ ब्राह्मण की रक्षा के अर्थ यह दुष्ट अति विकराल ताड़का नामी राक्षसी को मारो तब रामचन्द्र जी ने कहा कि हे ऋषी—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च ।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥

अर्थ—गऊ ब्राह्मण और देशहित के लिये तुम्हारी आज्ञाओं के पालन में उत्सुक हुआ हूं—अर्थ इन्ही के लिये मेरा अवतार है, देखिये सब जगह पहिले गऊ काही नाम लेते हैं क्योंकि गऊ भगवान को बड़ी प्रिय है देखो जब भगवान प्रथमही गऊ चराने को चले तो यशोदा जी ने कहा बेटा तू जूता पहिरे जा छाता लगाये जा जिस्से तुमको धूप कांटा न लगे ।

गवां सेवा स्वधर्मो न मतास्तु निश्चयादृता ।
यथागावो तथा गोपा सर्वधर्मः मीतिनिर्मला ॥
धर्मादापूयगोष्ठधि धर्मोरक्षति सर्वदा ।
स पापं त्यज्यतेस्वामीऽखिलधर्माधिरक्षता: ॥

ब्रह्मा जी की गऊ कन्या है इसवास्ते गऊ ब्रह्मा जी की प्रिय हैं (स) ऐसा कहां लिखा है कि गऊ ब्रह्मा जी की कन्या है (गो) देखो —

नमो ब्रह्मसुताभ्यश्चपवित्राभ्यो नमो नमः ।
ब्राह्मणश्चैव गावश्च कुलमेकाद्विधाकृतम् ॥

अर्थ—गऊ ब्राह्मण दोनों एकही कुल के दो स्वरूप हैं इसलिये है ब्रह्मदेव की कन्या का रूप अथवा वेद में प्र सिद्ध पवित्र ऐसी गऊओं को नमस्कार है देवताओं को जो अतिप्रिय पञ्चामृत सो गऊही से उत्पन्न होता है (स) पञ्चामृत किसको कहते हैं (गो) गोदुग्ध गोघृत गोदधी और मधू शक्कर इनको पञ्चामृत कहते हैं (स) इन व स्तुओं को देवता क्या करते हैं (गो) इनसे देवताओं का स्नान कराया जाता है—(स) इनसे देवता स्नान कराना कहां लिखा है (गो) देखो—

ॐ पयः पृथिव्यांपयऽओषधीषुपयो दिव्यन्तरिक्षेय-
योधाः । पय स्वतीप्रदिशःसन्तुमह्यम् गोक्षीर

धासदेवेश गोक्षीरेण मया कृतम् ॥

गोदुग्ध के पीछे गोदधी से स्नान कराना लिखा है।

गोदधी—दधिक्राव्णोअकारिषञ्जि ष्णोरश्वस्य व्विजिनः। सुरभी नो मुखाकरत्प्रण आयूंषि तारिषतत् ॥

दधी के बाद घृत से स्नान कराना लिखा है।

गोघृत—ॐ घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहा कृतं वृषभवक्षि हव्यम् ॥

इसके बाद मधू से स्नान कराना लिखा है।

मधू—मधूव्वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥

इसके बाद शक्कर से स्नान कराना लिखा है।

अपाएरसमुद्वयसए सूर्य्ये सन्तए समाहितम्म पाए रसस्य योरस स्तम्वो गृह्णाम्युत ममुपयाम गृहीतो सीन्द्राय त्वाजुष्टङ्गृह्णामयेष तेयो निरिन्द्रायत्वाजुष्टतमम् ॥

इस वास्ते देवताओं के नाम गोदान करना लिखा है क्योंकि गोदान से देवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं इस वास्ते

शास्त्रकारों ने लिखा है कि जो कोई मनुष्य किसी देवता को प्रसन्न करना चाहे वह उस देवता के नाम से गोदान करे क्योंकि गोदान के बराबर कोई और दान नहीं है। (म.) ऐसा कहां लिखा है (गो.) देखो महाभारत में।

गोदानात् परंदानं किञ्चिदस्तीति मे मतिः।
सागौन्यायार्जिता दाता कृत्स्नं तारयते कुलम्॥

अर्थ—गोदान से उत्तम दान और कोई नहीं है ऐसी मेरी बुद्धि है (म.) ऐसा कहां लिखा है कि गोदान से देवता प्रसन्न होते हैं (गो) देखो महाभारत में राजा मानधाता ने वशिष्ट जी से प्रश्न किया कि मैं कौन दान करूं जिससे ब्रह्मा विष्णु शिव प्रसन्न हों तब वशिष्ट जी ने कहा कि गोदान करो क्योंकि गोदान के बराबर कोई दान नहीं है (म) महाभारत में किस स्थान के ऐसा लिखा (गो) देखो विष्णु धर्म प्रकर्ण महाभारत में यह लिखा है—

ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय केशवस्य शिवस्य वा।
यानि दानानि देयानि तान्याचक्ष्व द्विजोत्तम॥
येन चैव विधानेन दानं पुंसः सुखावहम्।
ऐहिकामुष्मिकाप्तिं च करोति न विहन्यते॥

अर्थ—राजा मानधाता ने कहा हे द्विजोत्तम महामुनी मैं ऐसा कौन दान करूं जिससे ब्रह्मा शिव नारायण

प्रसन्न हों विधिपूर्वक उसको मेरे प्रति कहिये कि इस दान से नर इस लोक परलोक में अच्छे पुण्य भोगता है तब वशिष्ट जी ने राजा से कहा —

गोदानसादौ वक्ष्यामि प्रत्यक्षक्रमयोगतः ।
इत्यादिना गोदानं तादृशमुक्तम् ॥

अर्थ — गोदान में पहिले कहता हूँ जिसके पुण्य प्रभाव का प्रत्यक्ष फल मिलता है, हे राजन् सुनो —

स्नानाग्निकार्यमुद्दिश्य सुरूपां सुपयस्विनीम् ।
कुलीनां कपिलां दत्वा दत्तं भवति गोशतम् ॥

अर्थ — जो कोई भी गऊ को देवताओं के पञ्चामृतादि स्नान को वा यज्ञ के अर्थ देता है वह सम्पूर्ण संसार के दान का पुण्य पाता है और कपिला वा अच्छी दूध देनेवाली को जो देता है तो वह १०० गऊ के पुण्य को पाता है।

शिवाय विष्णवे चापि यस्तुदद्यात्पयस्विनीम् ।
धेनुस्नानोपहारार्थं स परं ब्रह्मगच्छति ॥

स्कन्दपुराणे ॥

अर्थ बहुत दूध देनेवाली गऊ को जो शिव विष्णु के स्नान के अर्थ देता है वह ब्रह्मलोक को जाता है और देखो शिवधर्म

दशगावः सवत्सा वृषभैकादशी स्मृता।
शिवाय विनिवेद्यैवं विशुद्धेनान्तरात्मना॥
रुद्रैकादशतुल्यात्मा वरभोगादिभिर्गुणैः।
शिवादि सर्वलोकेषु यथेष्टं मोदते वशी॥

अर्थ—१० गऊ एक वृष "वृषभैका दशा" कहाती है इस पूर्वोक्त विधि से शिव के अर्थ इसको देके शुद्ध चित्त दाता ११ रुद्र के तुल्य वरे ऐश्वर्य युक्त शिवलोक में सब को वश करता हुआ आनन्दवान होता है।

और जो सूर्य्य के अर्थ देता है

सौरीं सूर्य्यायो दद्यात्तरुणीं च पयस्विनीम्।
तेन दत्तं भवेत्सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।

अर्थ—भविष्यत पुराण में लिखा है कि जो नर सूर्य्य के अर्थ गोदान करता है उसको सारे संसार के दान का पुण्य होता है और भी।

य एवं गामलंकृत्य दद्यात् सूर्य्याय मानवः।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत्॥
यो दद्यादुभयमुखीं सौरभेयीं दिवाकरे।
ससप्तद्वीपा महीं दत्वा यत्फलं तदवाप्नुयात्॥

अर्थ—जो विधिपूर्वक गऊ को भूषित कर सूर्य्य के अर्थ

देती हैं वे अश्वमेध से अष्ट गुणा फल पाते हैं और जो उभय मुखी अर्थात् प्रसव करती गऊ को सूर्य्य के अर्थ देता है, वह पृथ्वीदान के पुण्य का फल पाता है—

दशगावः सवृषभा वृषभैकादशःस्मृतः ।
सूर्य्याय विनिवेद्येह यत्फलं लभते शृणु ॥
द्वादशादित्यतुल्यात्मा अणिमादिगुणैर्युतः ।
सौरादिसर्वलोकेषु यथेष्टं मोदते दिवि ॥

अर्थ—दस गऊ और एक वृष "वृषभैकादशी" कहाती है इस पूर्वोक्त विधि से जो सूर्य्य के अर्थ देता है वह शुद्धचित्त दाता ११ रुद्र के तुल्य ऐश्वर्य्ययुक्त सूर्य्य लोकादिकों के लोक में सब को वश करता हुआ आनन्दवान होता है और जो वृषभ आदिभी देता है वह सूर्य्य लोक में बसता है (स) क्यों जी गोदान इसी को कहते हैं जी *

* आज काल का गोदन ऐसा है कि जब ब्राह्मण यजमान की खूब खुशामद करता है कि बाबू साहब गोदान करने का बड़ा पुण्य होता है जब बाबू साहब ने देखा कि बहुत दिन से प्रोहित पीछे लगा है तो कहा कि अच्छा अब के ग्रहण में हम गोदान करेंगे जब ग्रहण आय तो कहावत है कि "मरी बछिया प्रोहित के घर" तो बाबू साहब ठांठ या बेकास जो मुफ्त में भूसा खाती है लेकर

ब्राह्मण गंगादि नदीयों में गऊ खड़ी कर रखते हैं और एक एक पैसे में पूछ पकड़वाते हैं या यजमान गऊ को गंगादि नदियों पर घसीटते ले जाते हैं और ब्राह्मण को दे आते हैं (गो) भाई यह बड़ी भूल है जो गऊ को घसीटते तीर्थ पर ले जाते हैं क्योंकि गऊ के अंग२ मे सर्व देवता, तीर्थ वास करते हैं(स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो भविष्यत् पुराण में।

दान करने को आये प्रोहित जी जो सचमुच प्रोहितेही थे — उन्होंने लोभवश यह भी लेली और अपनी प्रेत वाणी से ऐसा संकल्प बोलते हैं।

(संकल्प) ओं वैश्यां २ ततसद ब्राह्मणे ही पहर रात्रे प्रेत गऊ कपले वैसाख मनुअंतरे अठारा बीड़ी कल युगे यजमान प्रथम चरणे और जंबू यजमाने भारतखंड महे आर्यदेशनाशे काशी करवट तीर्थे महाशमसाने अँडे रीया मुखे मासानाम मसान मासे शूकरपक्षे मलिन तिथौ ॐ पूर्णमायोग चंद्रग्रहण पर वधो कालनिमित इसोमें गांम ठंठामें अस्थि चर्म सहितों दुग्ध व वत्स रहिताम जीर्ण वस्त्र सहताम् रुधिरमांसवर्जितों लालचीयमाणे ब्राह्मणेतु-भ्यंहं संपद्यते।

अथोरवाद—हीनचक्षु:धनमर्थघीनास्तोसंशयहइ:तथैव च।
आशीर्वादमथादत्तं यजमानस्यकुल क्षय:।

सर्वे देवा गवामंगे तीर्थं नितत्पदेषु च ।
तद्गुह्येषु स्वयं (विष्णुः) लक्ष्मीस्तिष्ठत्येवसदा पिता:
पादाक्रान्तमृदायो हि तिलकं कुरुते नरः ॥
तीर्थस्नातो भवेत्सद्योऽभयन्तस्य पदे पदे
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थंपरिकीर्तितं ।

जब घर में प्रोहित जी गऊ लेकर गये तो प्रोहितानी पूछती है कि यजमान ने कैसी गऊ दी है – तब प्रोहित जी बोले "कि सूम यजमान ने गाय दीनी, वह तो गाय नहीं कोई दैत्य धाया, झाड़ खड़ २ करे सींग हारे अड़े सब घर और घाट का भुसा खाया । घास के नास से दौड़ती आवती दूध के नाम सड़ल्पपाया ।

* उठरी ब्राह्मण हाथ ले दोहनी मूतते मूतते घर आया । तब प्रोहिती ताड़का को अवतार हो ले डंडा एक गऊ के चूतर और एक प्रोहित जी के चूतर पर जमाया और कहने लगी ।

बेचो ऐसी गौव ले जाई । दूध न देत घास नित खाई ॥
तब विप्र गऊ लेकर धावा । रातही रात बधिक घर जावा॥
बोले जाय मधुर अति बानी । बेद धर्म तज भयो कुरानी॥
दोये तीन मुद्रा तुम देवो । यह व्योपार हेत गऊ लेवो ।
स्वारथ साधक बाधक भाई । ले दान गऊ देत कटवाई॥

प्राणानत्यक्तयास्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ।
तस्मात् गावस्सदा पूज्याःमरुखमिच्छताजनैः ॥

अर्थ – सब देवता गाय के अंग में बास करते हैं, और तीर्थ उसके पावों में बास करते हैं मूत्र स्थान में लक्ष्मी बास करती है और गाय के खूरों की धूल जो नर लगाता है सो नर निर्भय हो तीर्थ स्नान का पुण्य पाता है और शुद्ध होता है, तीर्थ वही है जहां गाय रहती है वहां जो प्राणी मरता है वह ततकालही मुक्त हो जाता है यह निश्चय है। इसवास्ते गऊ को कभी तीर्थपर न लेजाना चाहिये और न कभी जल में खड़ा करना चाहिये (स) ऐसा कहां लिखा है कि तीर्थ पर गऊ न ले जाना चाहिये (गो) देखो संखमुनी कहते हैं।

"न तीर्थे न विषमे नाल्पोदके अवतारयेत ॥
इति सूत्रम् ।

अर्थ — संखमुनी अपनी संखस्मृती में लिखते हैं कि गऊ को कभी तीर्थ में न ले जाना चाहिये और न कभी जल में उतारना चाहिये (स) तो तीर्थों में गोदान करना व्यर्थ हुआ (गो) तीर्थों पर तो गोदान करना चाहिये परन्तु तीर्थों में याने जैसे गंगाजी के सीढ़ी जहां गऊ को खड़े होने से कष्ट होता है या गंगाजी के जल कीचड़ में गऊ

को कष्ट होता है मैं स्वामी पर गोदान न करना चाहिये हां गंगाजी के ऊपर जहां अच्छा स्थान हो विधि से गोदान करना चाहिये (स) गोदान की क्या विधि है (गो) देखो भारत में लिखा है कि

त्रिरात्र गोदान विधि विषये।

प्रविश्य च गवां मध्यसिमांश्रुति मुदा हरेत् ॥

अर्थात्—गोदान विधि में लिखा है कि गोदान दाता त्रिरात्र गऊओं के मध्य में खड़ा हो के इन श्रुतियों का पाठ करे।

गौर्मे माता वृषभश्च पिता मे दिवं शर्म मे प्रतिष्टा प्रपद्यते । प्रपद्यैका शर्वरी मुख्य गोषु मुनिर्णीसुत्सृते गो प्रदाने ॥

अर्थ—गऊ मेरे माता सी पूज्य है और वृषभ पिता सा और स्वर्ग मुझको उत्तम स्थान है मैं उसको त्यार हूं एक रात्री गऊ के बीच में मौनव्रत करके और फिर यह कहे।

श्रुतियां

गावोममाऽपतोनित्यं गावः पृष्टत एव च।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥
अयतस्सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्टतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

गोमहातम में लिखा है (म) कैसे लिखा है (गो) गऊ के अंग का पूजन करें (स) अंग२ का पूजन क्यों करें (गो) गऊ के अंग२ में देवता वास करते हैं इस वास्ते अंग२ का पूजन करना लिखा है (स) कौन२ अंग में कौन २ देवता वास करते हैं (गो) सुनो ॥

पृष्ठेब्रह्मा गलेविष्णु मुखेरुद्र प्रतिष्टतः।
मध्येदेवगणाःसर्वे रोमकूपे महर्षयः ॥
नागंपुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टो कुल पर्वताः।
मूत्रे गंगादयोनद्यो नेत्रयो शशि भास्करौ ॥
एते यस्यास्तनौदेवा सा धेनुर्वरदास्तुमे ।

अर्थ—पीठ में ब्रह्मा वास करते हैं गले में विष्णु मुख में रुद्र मध्य मे सर्व देवता और रोम२ मे ऋषी और पोंछ में नाग देवता और चारो खुरो में पर्वत और मूत्र मे गंगादि नदीयां और एक नेत्र मे सूर्य और दूसरे में चन्द्रमा वास करते हैं। फिर पुजन करके यह कहे

यमद्वारे महाघोरे तप्ता वैतरणी नदी।
तां तर्तुं गांददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीमिति ॥

अर्थ—बड़े भयानक यमद्वार में तपती बैतरणी नाम नदी के पार जाने को नरक मे डूबते को निर्भय तारने वाली गऊ को हे विप्र तुमको देता हूं (स) क्यों जी ऐसी

भयानक नर्क से भरी हुई बैतरणी नदी को पार गऊ कैसे करेगी क्योंकि गऊ खुदही पापी है तो पापी पापी को कैसे बचा सकेगा (गो) गऊ को आपने पापी कैसे जाना (स) जो नर्क में जाये वही पापी होता है देखो जब गऊ ने कुछ पाप किया तब तो वह नर्क में जाती है (गो) उसको यह नर्क नहीं मालूम होता केवल प्राणी को नर्क मालूम होता है (स) और गऊ को (गो) गऊ को नहीं (स) गऊ को क्यों नहीं (गो) गऊ में एक ऐसी आकर्षण शक्ति है कि उसको न तो तप मालूम होती है और न नरक मालूम होता है और वह मनुष्य को उसके पार ले जाती है जैसे नाव को वायु ले जाती है (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो शिवपुराण।

स्वकर्मभि मामघसन्निवद्धन्तीव्रान्धकारे नर्के पतन्तं महर्णान्नोविवातयुक्तद।नं गवां तारयत परच ॥

अर्थ—जैसे समुद्र में नाव पड़ी हो और किनारे नहीं लगती और वायु उसको एक बारगी किनारे लगा देती है वैसही, गऊदान रुपी वायु संसार रुपी समुन्द्र में पड़े हुये प्राणी को पार अर्थात् किनारे लगा देती है (स) क्यों जी आकाश तो शून्य है और पृथ्वी पर बैतरणी नदी कहीं

सुनने में नहीं आती इस्से यह गपोड़ा है।(गो) भाई वैत रणी नदी सत्य है, गपोड़ा नहीं है परन्तु तुम्हारी समझ का फरक है मन को स्थिर करके देखिये कि वैतरणी नदी सत्य है वा नहीं देखो।

यद्यस्ति चेद्यमपुरार्द्ध पथि प्रसिद्धा ।
तृष्णूपशोणितजला कुलिता विरुद्धा ॥
व्यालाजड़ादि चरिता सरिता भ्रमाढ्या ।
तत्तारणे तरणिरूपधरा धरायाम् ॥

अर्थ—यदि परमात्मा के रचित देहरूपी यमलोक में जीवात्माओं के अन्त करण रूपी भूमि पर तृष्णारूपी वैत-रणी नदी (जो कि काम क्रोध लोभ मोह अहङ्काररूपी पीप और रुधिर से भरी राग और द्वेषादि जल जन्तु संयुत परमात्मा के जानने का रास्ता रोकने वाला) उसके पार उतारने की नावरूपी गऊही है। इस लिये गोदान करना चाहिये सो गोदान की यही विधि है अर्थात् गोदान के समय ब्राह्मण का भी पूजन करे (स) ऐसा कहां लिखा है। (गो) देखो—

प्राङ्मुखो यजमानस्तु पूजयेद् ब्राह्मणं ततः ।
कोऽदादिति च मन्त्रेण गृह्णीयाद्ब्राह्मणः स्वयम् ॥

एवं विधानतो दत्वा याति दाता शिवालयम्।
तत्र भुक्ताऽक्षयान् भोगा नन्ते प्राप्नति शाश्वतम्॥

अर्थ—गोदाता पूर्व मुख होके ब्राह्मण को पूजन करे और फिर प्रार्थना करे कि ग्रहण कीजिये तब ब्राह्मण।

"कोऽदात्कामेऽदात्"

एतदादि मन्त्र को स्वयं पढ़ करके ग्रहण करे इस विधि से दानदाता महादेव के लोक में बहुत प्रकार के उपभोगों को कर उसके पुण्य प्रभाव से जन्मान्तर में मोक्ष भागी होता है—देवलाजी भी कहते हैं—

देवलः—विधिमभिधाय

दत्वैवं वित्तभोगाढ्यो दिव्यस्त्री वृन्दसंयुतः।
गोवत्सरोमतुल्यानि वर्षाणि दिवि मोदते॥

अर्थ—इस विधि से गोदान करने से गोदाता गोवत्स के रोम समान वर्ष तक स्वर्ग अप्सराओं से शोभित हो नाना-प्रकार के द्रव्य भोगयुक्त स्वर्ग में आनन्द करता है।

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वा-
स्तावन्ति वर्षाणि महीयते स्वः।
स्वर्गाच्च्युतश्चापि तत स्त्रिलोके
कुले समुत्पत्स्यति गोमतां सः॥ (म०भा०)

अर्थ—गऊ के शरीर में जितने रोम हैं उतने वर्ष तक स्वर्ग में गोप्रदाता सत्कृत होता है उसके पीछे कहीं न कहीं गोसेवी ही के जन्म पाता है अर्थात् विधिपूर्वक एक ही गोदान से प्राणी जन्म जन्मान्तर गोभक्त होकर नर्क से कभी भेंट नहीं करता।

गोप्रदो नरकन्नैति पयःपीत्वा ऽमृतं जलम्।
विमाने नार्कवर्णेन दिवि राजन् विराजते॥ भा०

अर्थ—पापी भी गोप्रदाता प्राणी नर्क में नहीं पड़ता है किन्तु गोदान के पुण्य प्रभाव से जल स्थानापन्न दुग्ध अर्थात् गौओं का दूध अमृत के पावन से क्षुत्पिपासादि क्लेशों से रहित परम प्रकाशमान बिमान से नन्दनादि स्थानों में बिहार करता है।

तत्रचारुवेषाः सुश्रोणीराशतशोवरषिताः।
रमयन्ति बिमानस्थं दिव्याभरणभूषिताः॥
वेणूनां वल्लकीनां च नूपुराणां च निःस्वनैः।
हासैश्च हरिणाक्षीणां सुप्तः सम्प्रति बुध्यते॥

अर्थ—उस स्वर्ग में अनेकानेक देवाङ्गना सेवन करती हैं और नाना प्रकार के वाद्यों से और अप्सराओं के विभूषणों के झणिकारों से और मधुर वाक्यों से जग उठ जाती है।

प्रसादा यत्र सौवर्णाः शय्या रत्नो ज्ज्वलास्तथा ।
वराश्चाऽप्सरसो यत्र तत्र गच्छन्ति गोप्रदाः ॥ भा

अर्थ—जहां सुवर्ण के मन्दिर हैं रत्नों से प्रकाशित पर्यङ्क हैं और जिनमें श्रेष्ठ अपसरानिवास करती हैं उनमें वे लोग वास करते हैं जो लोग वेद विधि से गोदान करते हैं (स) अच्छा एक गऊ के दान से तो स्वर्ग मिलता है और जो ज्यादे गोदान करे उसका कहां वास होता है (गो) देखो कहां वास होता है।

गोप्रदानेन स्वर्गमाप्नोति दशधेनुप्रदो गोलोकं शतप्रदश्च ब्रह्मलोकम् ॥ विष्णुपुराणे ॥

अर्थ—एक गोदान से स्वर्ग और दस गोदान से गोलोक और सौ गोदान से ब्रह्मलोक निवास होता है (स) कब तक (गो) देखो।

यावन्ति तस्य रोमाणि सवत्साया दिवव्रतः ।
तावती वत्सरानास्ते स नरो ब्रह्मणोऽन्तिके॥ व०

अर्थ—जितने रोम गऊ बच्छे के हैं उतने रोम तक गोप्रदाता ब्रह्मलोकादि स्थानों में बास करता है। परन्तु विधि से जो करता है वह—

भवत्यथो पापहरा यावदिन्द्राश्च चतुर्दश ।
सर्वेषामेव पापानां कृतानामविजानता॥

प्रायश्चित्तमिदंप्रोक्तमनुतापोपबृंहितम् ।
सर्वेषामेव देवनामेकजन्मकृतं फलम् ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यै स्तथा,शूद्रैश्च मानवैः ।
लोकाः कामदुघाः प्राप्ताः दत्वैतद्विधिना नृप॥
गोभ्योऽधिकं जगति ना परमस्ति किञ्चिद्-
दानं पवित्रमिति शास्त्रविदो वदन्ति ।
ताः सम्पदः सुखप्रदैश्च समीहमाने-
र्देयाः सदैव विधिना द्विजपुगङ्गवेभ्यः ॥ अग्निपु॰

अर्थ—ऐसे विधि से गो सब लोक देती है सब पाप हरती है १४ इन्द्र भोग से हो गये सब पापों का यह प्राय श्चित पश्चात्ताप के साथ होता है सब देवों की जन्म माया है गोदान से अधिक इस संसार में कोई दान पवित्र नहीं ऐसा शास्त्रीजन कहते हैं।

(स)—गोदान करने से किसी का उद्धार भी हुआ है?
(गो) जी हां देखो सनतकुमारजी कहते हैं।

सर्वाणि दानानि भवन्ति दातुः
सम्यक् प्रदत्तानि मुने हि सम्यक् ।
तत्ते प्रवक्ष्यामि कृतं हि येन
दानोत्तमं तत्त्वधुना शृणुष्व ॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनं ।
राजाचित्ररथोनाम पुरासीन्नृपसत्तमः ॥
बुभुजे सकलान् भोगान् सप्तद्वीपवतीं महीं ।
समाक्रम्य गतः सोपि सुरथः त्रिदशालयम् ॥ २ ॥
तत्र जित्वा सहस्राक्षं दैवैः सार्द्धं बलात्ततः ।
शासनं कारयामास स्वकीयं तत्र तत्र ह ॥ ३ ॥
एवं पालयतः सम्यक् त्रैलोक्यं सचराचरं ।
सुविस्मयमभूत्तत्र दृष्ट्वा राज्यं सुखं स्वकम् ॥ ४ ॥
पुत्राणां षट् सहस्राणि कोशं चाक्षय मेव च ।
जनानामनुराग च प्रभूतनरवाहनं ॥ ५ ॥
स्फीतिर्जनपदाना च नाकालमरणं तथा ।
भार्य्यायाश्चैव सौभाग्यं रूपं चाप्रतिमां तथा ॥६॥
एतत् संचिन्तयित्वाथ कथमप्यन्यजन्मनि ।
पुनः स्यादिह संप्राप्तिः पूर्वधर्मादहं मुनीन् ॥ ७ ॥
पृच्छामि सर्वधर्मज्ञान् करिष्ये सकलं पुनः
एवं सचिन्त्य राजासौ वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ राज्यमव्याहत भुवि ।
रूपं चाप्रतिम लोके भार्य्या मेस्ति सुशोभना ॥९॥

शरीरारोग्यमैश्वर्यं दानशक्तिरनुत्तमा ।
स्त्रियोन्नपानसामर्थ्यं हानिः स्यान्नैव मे क्वचित्॥
धर्मेशानिघ्न मे नास्ति शक्तिर्मे पालने भुवः ।
यद्यदिच्छाम्यहं कर्तुं तत्वारोमि महामुने ॥११॥
एवं पूर्वकृताद्धर्मादिदं प्राप्तं मयाखिलं ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व पूर्वजन्मकृतं फलम् ॥१२॥

अर्थ – सनतकुमारजी कहते हैं कि एक चित्ररथ राजा था जिसका सात द्वीप में राज्य था। एक रोज रथ में बैठ कर इन्द्रलोक में गया, और सब देवताओं सहित इन्द्र को जीत त्रैलोक्य का वहां राज्य करने लगा – एक रोज उस राजा को इतना ऐश्वर्य देखकर अचंभा हुआ कि मैंने ऐसा कौन पुण्य किया है कि जिससे मुझ को यह ऐश्वर्य मिला है कि साठ हजार मेरे पुत्र हैं और अघन्य खजाना मिला, कैसी उत्तम मुझ को सवारी मिली है, और कैसी रूपवति प्रसन्नचित्त मेरी प्रजा है कि जिनकी कभी अकाल मृत्यु नहीं होती, और स्त्री भी मुझ को भाग्यवती और रूपवती मिली है अब मैं फिर ऐसा कौन धर्म करूं कि जिससे मुझ को फिर भी ऐसाही ऐश्वर्य मिले यह चिन्ता कर धर्म के जाननेवाले वशिष्ट मुनि के पास गया और प्रणाम कर कहने लगा हे मुनीश्वर आप के प्रसाद से मैंने

यह अकण्टक राज्य पाया है, और मेरा ऐश्वर्य्य भी ऐसा है कि और किसी दूसरे का नहीं है, और स्त्री भी मेरी भाग्यवती रूपवती है, और शरीर भी मेरा आरोग्य है, प्रजा पालन दान शक्ति से मेरी अरुचि भी कभी नहीं होती है। और जो करना चाहता हूं निष्कण्टक सब कर लेता हूं— सो हे मुने मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौन पुण्य किया है जो मुझ को ऐसा ऐश्वर्य्य मिला है और अब कौन धर्म करूं जो मुझ को आगे यह फिर मिले सो मुझ को आप बता दीजिये। तब वशिष्ठजी ने कहा हे राजा सुन—

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठः प्राह तं नृपं ।
चिन्तयित्वा चिरं कालं शृणु भूपान्यजन्मनि॥१॥
यत्कृतं ते प्रवक्ष्यामि कुयोनिमनुवर्त्तते ।
अवन्तीनगरी नाम पृथिव्यां जघनेस्थिता ॥ २ ॥
धर्मपालो नृपस्तत्र सर्वधर्मानुशासकः ।
वर्णावाह्यस्त्वमप्यासीत् स्वधर्ममनुवर्तकः ॥ ३ ॥
वसतस्तेत्वनावृष्टिरासीच्च वहुवार्षिकी ।
अन्नक्षयात्ततस्त्वन्तु गत्वा तु वनमाश्रयत् ॥ ४ ॥
तत्र ते वसतो लोके वहवः समुपाश्रयात् ।
क्षुत्क्षामकर्षिताः सन्तः फलमूल महाशिनः ॥

निरन्ने च ततो लोके तस्मिन् फलविवर्जिते ।
क्षुधार्त्तो भार्यया युक्तः प्रागादङ्गारकोहरः॥ ६ ॥
तस्मात् त्वं भार्यायायुक्तो दारुण्याः दायसत्वरः ।
प्राविशन्नगरीं सोपि विक्रेतुं तानि सर्वथा ॥७॥
न जग्राह जनः कश्चिद्दम्पत्योरटमानयोः ।
ततः सायं क्षुधार्त्तौ तु ध्वनिं शुश्रुवतुस्तदा ॥८॥
वणिङ्मुख्यस्य विप्राणां जुह्वतां तद्गृहाङ्गणे ।
तौ गत्वा तत्र काष्टानि ज्वालयामासतुस्तदा ॥
प्रतापार्थन्तु माघस्य पूर्णिमायां समागमे ।
राजन्नयोर्महाभाग तत्र तावूषतुस्तदा ॥ १० ॥
ततो जनार्द्दनं देवं समभ्यर्च्य विधानतः ।
कृतनित्यक्रियो धीमन् हर्षितः स वणिक्वरः ॥
धेनुं समर्पयामास हैमीं विप्रेभ्य एव हि ।
सदक्षिणां च भो राजन् भक्त्या परमया युतः ॥
सा दृष्टा दीयमाना वै युवयोः क्लिश्यमानयोः ।
तं दृष्ट्वा दुःखसन्तप्तौ न कृतं पुण्यमावयोः ॥१३॥
येनेदृशौ भविष्यावो धरन्तौ मनसात्विति ।
दम्पत्योर्युवयो राजन् तेनेयं हृदिरत्तमा ॥१४॥

प्राप्तंधर्म्मफलात् राज्यं तस्मात् त्वं देहिमाम्प्रतम्॥
येन त्वमक्षयान् लोकान् प्राप्नोपि देवदुर्लभान् ॥
एतत्ते कथितं सम्यक् यथा वृत्तमभूत्पुरा, ।
तस्मात् त्वं देहिराजेन्द्र धेनुं च सर्वकामदां ॥
येनाच्युतिं समाप्नोति स्वर्गं नृपतिसत्तम ।
दीयमानां प्रपश्यन्ति धेनुरूक्तस्य भक्तितः॥१६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमांगतिं ।
शृणु भूपाल भद्रन्ते मनसा ये च गोप्रदाः ॥

तब वसिष्ठजी बोले कि हे राजा तेरा जन्म धर्मपालका राजा की अवनतिका नगरी मे एक शूद्र के घर में हुआ या एक समय बहुत दीवस तक उस नगरी में वर्षा नहीं हुई और ऐसा अकाल पडा कि अन्न तक खाने को नहीं रहा उस समय तूं और तेरी स्त्री दोनों वन को चले गये और वहा से लकडीयों को तोड कर शहर में बेचने को लाये परन्तु तेरी लकडीयां किसी ने नहीं लीं- उसीदिन एक बनिये के घर में ब्राह्मण यज्ञ कररहे थे तूने लकड़ियां बिना मूल्य यज्ञ में दे दी और स्त्री सहित यज्ञ देखने लग गया और वह बनियां जब विष्णु की पूजा कर गोदान करने लगा तो तूं स्त्री सहित गोदान होता देखता रहा सो तुमको इस गोदान देखने का यह फल अकंटक राज्य

मिला है और यदि अब तूं प्रत्यक्ष गोदान करेगा तो तुझ को वह पद मिलेगा जो देवताओं को भी दुर्लभ है । हे राजन् सुन तुझ को मैं गोदान के फल का एक इतिहास सुनाता हूं एकाग्रचित होकर सुनो ।

धेनुं सदक्षिणां दृष्ट्वा तेषां वाक्यं यथा तथा ।
चक्रवर्त्ती महावीर्य्यः पृथू राजाधियो भवत् ॥१॥
बुभुजे पार्थिवं क्षेत्रं स देवासुरराक्षसा ।
गायन्ति मुनयो यस्य कीर्त्ति यस्य च भूतले ॥२॥
स्वर्गे च देवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
तद्वृत्तं चोपजीवन्ति तथान्ये भूभृतोपि च ॥ ३ ॥
यावत्सूर्य्यउदेतिस्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं चैव पृथोःक्षेत्रं त्रैलोक्यान्तःप्रवर्तकम् ॥ ४ ॥
तस्य तदभिमानं च वीर्य्यं च पृथिवीपतेः ।
रूपं दृष्ट्वा शुभा पत्नी तस्याभूच्चातिविस्मया ॥५॥
ततः सा चिन्तयामास सम्पदा विस्मिता सती ।
कथं स्यात् सम्पदेषा मे किं कृतं चान्यजन्मनि ॥
एवं सा बहुधा चिन्त्य पृथुं चैव समानुदत् ।
अनिश्चयपरो यातः वैन्यस्तु विस्मयान्वितः ॥७॥

ततः पप्रच्छ सर्वज्ञान् ब्राह्मणानादिभूमिपः ।
प्रणिपत्य महाराजो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥
यदि मानुग्रहावुद्धिर्भवतां मुनिसत्तमाः ।
तदहं प्रष्टुमिच्छामि किंचित्तद्वक्तुमर्हथ ॥ ९ ॥
कोहमासं पुरा विप्राः किं कर्म च मया कृतं ।
किं चानया सु चार्वंग्या मम पत्न्या कृतं पुनः ॥
येनावयोरियं स्फीतिः सुसंभूता सुदुर्लभा ।
चत्वारश्चाप्रतिहता गतयो मम पृच्छतः ॥ ११ ॥
इति पृष्टानरेन्द्रेण समस्तास्ते तपोधनाः ।
मरीचिं प्रेरयामासुः कथ्यतामिति भूतले ॥१२॥
इत्युक्तः सोतिधर्मज्ञः प्रजापतिसुतस्ततः ।
योगमास्थाय सुचिरं यथावत् ऋषिसत्तमः ॥१३॥
ज्ञातवान् आदि राज्यस्य सर्वं पूर्वविचेष्टितं ।
स तमाह ततो भूपं चिन्तितार्थो यतव्रतः ॥१४॥

अर्थ—एक बडा प्रतापी पृथु राजा था जिसका स्वर्ग मृत्यु और पाताल तीनों लोकों का सूर्य्य अस्त तक राज्य था जिसकी कीर्त्ति ऋषि मुनि पृथ्वी पर और स्वर्ग में देवता और पाताल में नाग लोग गाते हैं, एक रोज उसकी

स्त्री यह ऐश्वर्य देखकर राजा से पूछने लगी कि हे राजा आप किसी मुनि से अपना वा मेरा पूर्व जन्म का हाल पूछिये कि हमने ऐसा कौन धर्म किया है कि जिससे हमको यह ऐश्वर्य मिला है। तब राजा रानी सहित मुनियों के आश्रम पर गया और नमस्कार करके अपने पूर्व जन्म का हाल पूछने लगा, तब मुनियों में से मरीची मुनी ने योगबल से राजा का पूर्व हाल जानकर कहा कि हे राजा सुनो।

मरीचिरुवाच।

श्रृणु भूपाल यस्येदं सकलं कर्म्मणः फलम्।
भार्य्यया सहितं प्राप्तमत एकमना भव ॥ १ ॥
बभूव त्वं पुरा शूद्रः परहिंसापरायणः।
पुरेयं भवतो भार्य्या पतिव्रतपरायणा ॥ २ ॥
त्वच्चित्तानुगता नित्यं तव शुश्रूषणे रता।
निःस्वो भूत्वा परिक्षीणः परेषां भृत्यतां गतः ॥
त्यज्यमानापि सा साध्वी नौत्यजत्त्वामनिन्दिता।
अनया च समं राजन् विष्णोरायतने त्वया ॥४॥
नीता हेममयी धेनुर्धनिनो वृषलस्य तु।
अयोध्यायां महाराज कस्य भक्त्यानया सह ॥

परिचर्य्या कृतादातुर्मनसा पुण्यकांक्षिणः ।
संमार्जनादिकं सर्वं कृतं ते भक्तितो नृप ॥ ६ ॥
निःशेषसुपयान्ति तत्पापं शुश्रूषणादनु
सर्वकामप्रदं कर्म स्कन्धन्याः कृतं त्वया ।
तेनेदमखिलं राज्यं अशेषजगती तव,
एवं नरेन्द्र शूद्रत्वात्तस्य कर्मपरायणः ॥
तन्मयत्वेन संप्राप्त महिमानमनुत्तम् ।
यः पुनर्यो नरो भक्त्या धेनुं हैमीं प्रयच्छति ॥
शतं पूर्वापरं चापि कुलानां तारयेन्नृप ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्य्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥
न स्वर्गात् च्यवते तावत् विमुक्तः सर्वपातकैः ।
धर्मार्थकाममोक्षं च यदिच्छेत्तत्तदाप्नुयात् ॥

अर्थ—तुम पहले जन्म में एक हिंसक शूद्र थे परन्तु तुम्हारी स्त्री बड़ी पतिव्रता थी और दिन रात तुम्हारी सेवा किया करती थी जब तुम बहुत निर्धन हो गये तो तुम उसको त्याग कर एक की नौकरी कर ली। परन्तु इसने तुमको नहीं त्यागा था एक समय तेरा मालिक अयोध्या जी में गोदान करने गया। तू और तेरी पत्नी भी उसके संग थे ...तू ने वहां ...केवल गोदान ...स्थान ...

भक्ति से साफ किया था। सो उसका यह फल तुझको मिला है कि तेरे पाप सब नाश हो गये और यह अखंड राज्य तुझको मिला है राजन् जो प्रत्यक्ष गोदान करते हैं तो उनके सात पूर्व और ७ पिछले पुरुष सूर्य चन्द्र पर्यन्त स्वर्ग में वास करते हैं देखो राजा अम्बरीष और राजा प्रसेनजित् ने गोदान किया था उनकी कथा सुनाते हैं।

अम्बरीषो गवान्दत्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान्।
अर्बुदानि दशैकंच सराष्ट्रोऽभ्यपतद्दिवम् ॥ १ ॥
दत्वा शतसहस्रन्तु गवां राजा प्रसेनजित्।
सवत्सानां महातेजा गतो लोकाननुत्तमान् ॥

अर्थ—महाराज अम्बरीष ने ब्राह्मणों को ११ अर्बुद गऊओं का दान दिया और प्रजाओं के सहित स्वर्ग को गये॥ १॥ और राजा प्रसेनजित् ने बछड़ेवाली गऊओं के दान से परम उत्तम स्वर्गादि लोकों में वास पाया है ॥२॥ (म) क्यों जी चाहे कैसी ही गऊ हो उसके दान से यह फल मिल सकता है (गो) कैसीही गऊ से आप का क्या मतलब है (म) जैसे बूढ़ी, दूधहीन, रोगी ऐसी गऊ दान से फल मिलता है या नहीं (गो) नहीं (म) क्यों (गो) आप जानते हैं कि गोदान ब्राह्मणों को सुख के वास्ते दिया जाता है कि वह दुग्ध पान करें निर्विघ्न हो विद्या पढ़ें

पढ़ावें और घृत से अग्निहोत्र करें संसार का उपकार करें। जब रोगी बूढ़ी दूधरहित देंगे तो ब्राह्मणों को अग्निहोत्र और पढ़ना पढ़ाना छोड़कर उनकी उनकी सेवा करनी पड़ेगी अर्थात् सुख के बदले दुःख उठाना पड़ेगा इसी वास्ते ऐसी गौ दान करना मना लिखा है (म) मना कहां लिखा है (गो) देखो याज्ञवल्क्य जी लिखते हैं।

यथा कथञ्चिद्दत्वा गां धेनुंवाऽधेनु मेव वा।
अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥

अर्थ—रोग क्लेश रहित एक ब्यान की अथवा अनेक ब्यान की गऊ के दान से दाता नर स्वर्ग में देवताओं से सत्कार पाता है, देखो "संवर्त"।

यो ददाति शफैरौप्यैर्हैमशृङ्गीमरोगिणीम्।
सवत्सांवस्त्रसंयुक्तां सुशीलां गां पयस्विनीम् ॥

अर्थ—चांदी के खुर सुवर्ण के सींगवाली रोगरहित बच्चा सहित अच्छे वस्त्र ओढ़ी हुई सरल स्वभाव वाली बहुत दूध की गऊ जो दान करते हैं ये नर सर्वज्ञत होते हैं।

(म) आज कल तो रोगी, बूढ़ी, दूधहीन गऊ काही दान देखते हैं और ब्राह्मण लोग भी उसको तुरत ले लेते हैं और आप कहते हैं कि न देनी चाहिये। (गो) आजकल

की यह कहावत है कि "कि जैसे भूतदास वैसेही प्रेतदास" अर्थात् जैसे चेला वैसेही गुरु ।

* गुरु लोभी शिष लालची दोनों खेलें दाव ।
दोनों वपुरे डुबि मरे चढ़ि पाथर की नाव ॥

अर्थात् यजमान को तो यह लालच है कि बूढ़ी रोगी दूधहीन रहेगी तो दो आना रोज खायगी दान करने से दो आना रोज तो बचेंगे और लोग यश भी करेंगे कि इसने गोदान किया है । चेला तो यह दाव खेलता है और पुरोहितजी जो यथार्थ में प्रेतजी हैं वह यह सोच के ले लेते हैं कि दो चार गज कपड़ा और दो चार आना पैसा आजावेगा सो ऐसेही दो चार रोज रखेंगे फिर कसाइयों के भाई भड़कसाई, नटादियों के हाथ बेंच देवेंगे दो रुपया उनका कहीं नहीं गया तो यह सोच के वह ले लेते हैं । इस वास्ते यह दोनों पापी होते हैं सो ऐसों को गोदान नहीं देना चाहिये (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो—

अकुलीनाय मूर्खाय लुब्धाय पिशुनाय च ।
हव्यकव्यव्यपेताय गौर्न देया कथंचन ॥

* आज कल यदि प्रत्यक्ष देखना हो तो अलईपुरा, नव्वाबगंज, सिकरौरादि कसाईखानों में ऐसे गऊओं को जिस समय चाहो जाकर बिकते देख लो ।

अर्थ—नीचकुल के मनुष्य को और मूर्ख को और लोभी को चुगलीखोर को व्याज्ञा (?) सधाविवर्जित ऐसे को कभी गौ देना नहीं। भाई ऐसी गऊदान न दो जिससे तुम भी नर्क में जाओ और न ऐसे दुष्ट लोभी ब्राह्मणों को दो जो दूसरेही दिन गऊ को अधिकमूल्य पहुंचा देनेवाले होते हैं (म) तो कैसे ब्राह्मण हों और कैसी गऊ हो (गो) देखो जो शास्त्र बताता है ऐसे ब्राह्मण होने चाहियें और ऐसी गौ दान करनी चाहिये।

कपिलां विप्रवर्य्याय दत्वा मोक्षमवाप्नुयात्।
द्विगुणांपरस्कृरोपिता महती कपिलां सुलां॥ कुर्मपु०

अर्थ—वेदविहित विधि से उत्तम ब्राह्मण को कपिला गऊ का दान दो ऐसे दान से दाता मोक्ष को पाता है अर्थात् दुखों से निर्मुक्त होता है और देखो—

हेमशृङ्गी रौप्यखुरा सुशीला वस्त्रसंयुता।
सकांस्यपात्रदातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा॥

अर्थ—हेमशृङ्गी रौप्याखुरा वस्त्रयुक्त कांस्यपात्रयुक्त सुशील विशेष दूध देनेवाली गौ दक्षिणा सहित पात्र को देना चाहिये।

विधिना च यदा दाता पात्रे धेनुः सदक्षिणा।
तदा तारयते जन्तून् कुलानामयुतैःशतैः॥ न०पु०

अर्थ — दक्षिणा के सहित गऊ को जो सुपात्र को देते हैं वह अनन्तानन्त श्रेणी के पूर्वपुरुषों को भी नर्क से निकालते हैं।

सदक्षिणां प्रदद्याद्गां सोऽक्षयं स्वर्गमवाप्नुयात्।
गवि रोमाणि यावन्ति प्रसूतिकुलसंस्थितः॥
तावत्यब्दानि वसति स्वर्गे दाता न संशयः॥ न॰ पु॰

अर्थ — दक्षिणा के सहित गऊ के दान से गऊ के रोम तुल्य वर्ष शरीर त्याग पीछे स्वर्ग में वसता है यह निश्चय बात है —

दत्ता सा विप्रमुख्याय स्वर्गमोक्षफलप्रदा।
सप्तजन्मकृता पापान् मुच्यते दुःखसंयुतात्॥ कु॰ पु॰

अर्थ — जो श्रेष्ठ ब्राह्मण को गोदान देता है वह स्वर्ग में मोक्ष फल पाता है और इस लोक में दारिद्र्यादि दुःखों से छूटता है और ७ जन्म के पापों से निर्मुक्त होता है।

यान्यान् प्रार्थते कामांस्तांस्तान् प्राप्नोति मानवः।
अन्ते स्वर्गापवर्गौ च फलमाप्नोत्यसंशयः॥ कु॰ पु॰

और जो मनोरथ उसके हैं सो सब सुफल होते हैं। अन्त में शरीरान्त में स्वर्ग और अनेकों जन्मान्तर में उत्तरोत्तर पुण्योंमिति से मोक्ष भी होता है और देखो —

द्विजाय शिवभक्ताय सवत्सांगां निवेदयेत् ।
सहेमवस्त्रकांस्यां च महापुण्यमवाप्नुयात् ॥
यावत्तद्रोमसंख्यानं तावद्देव्याःपुरं वसेत् ।
इहैव गतपापोऽसौ जायते नृपसत्तमः ॥ दे॰ पु॰

अर्थ—सब उपकार सहित गऊ को जो शिवभक्त पात्र को दान देता है वह गौ के रोम तुल्य वर्ष में (देवीजी के) लोक अर्थात् कैलाशादिकों में वास पाता है और दूसरे जन्म में अथवा उसी में पाप से निर्मुक्त हो राजा होता है और देखो—

रुक्मशृङ्गीं रौप्यखुरां वस्त्रकांस्योपदोहनाम् ।
सवत्सां कपिलां दत्वा वशान् सप्त समुद्धरेत् ॥
यावन्ति तस्या रोमाणि सवत्सायां भवन्ति हि ।
सुरभीलोकमासाद्य रमते तावतीः समाः ॥

अर्थात् व्यासजी भी कहते हैं कि ऐसी गौ दान करने से उतने रोम तक गऊदाता सुरभीलोक में बसता है और देखो—

समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्वा पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसपन्नां ब्रह्मलोके महीयते ॥ भारत ।

अर्थ—माता के वर्णवाले वत्स सहित अहिले ब्यान

की बहुत दूधवाली सीधी सुभाववाली कपिला को वस्त्र भूषण से भूषित करके जो दान देते हैं वे ब्रह्मलोक में बास करते हैं।

रोहिणींतुल्यवत्साश्च धेनुंदद्यात्पयस्विनीम् ।
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामिन्द्रलोके महीयते ॥ भ० ॥

अर्थ—सर्वथा पूर्ववत् लक्षण ललित याने लाल रंग की गऊ को दान से दाता इन्द्रलोक का निवास पाता है--

तथा पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
नरकस्थाः समुच्यन्ते नीलां गां ददते तु यः ॥

अर्थात् नील याने काली गऊ का जो दान करते हैं उसके पिता पितामह प्रपितामह नर्क में जो पड़े होवें तो निर्मुक्त हो जाते हैं।

यावन्ति रोमकूपानि कपिलाङ्गे भवन्ति हि ।
तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥

अर्थ—कपिला के शरीर में जितने रोम हैं उतने कोटि वर्ष तक उसका दाता स्वर्गबास करता है।

एवं तत्तद्वर्णगोप्रदानेन तत्तल्लोकावाप्तिर्निर्दिष्टा।
कपिलां ये प्रयच्छन्ति वस्त्रच्छन्नांस्वलंकृताम् ॥
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालांगूलभूषिताम् ।
श्वेतवस्त्रपरिच्छन्नां घण्टास्वनरवैर्युताम् ॥

सहस्रं यो गवां दत्वा कपिलां चापि सुव्रत ।
सममेव पुरा प्राह ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्वरः ॥ भारत
दाताऽस्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान्रोमसम्मितान् ।
कपिला चत्तारयतिभयस्त्वा सप्तमं कुलम् ॥

अर्थ—जो अच्छी अंग आठ उत्तम भूषण सुवर्ण से मढ़े सींग चांदी के मढ़े खुर मोतियों के गुच्छे पंछ में लगे और घण्टी घण्टों के शब्द के कोलाहल से शोभितवाली और श्वेत वस्त्र की चांदनी आदि की छाया में खड़ी ऐसी एक कपिला गाय का दान करते हैं † उन्हें सहस्र गोदान के समान फल होता है ऐसा वेदार्थ ज्ञानियों से ब्रह्मदेवजी ने कहा है—

(स) क्यों जी जो रोगी बूढ़ी गाय पाल न सकता हो और जिसके पास ऐसी श्रद्धा न हो तो वह क्या करे (गो) जो रोगी बूढ़ी गऊ को पाल न सकता हो तो वह अनाथ गोशाला में दे आवे और जिसको ऐसी श्रद्धा दान करने की न हो वह उस अनाथगोशाला में वित्तानुसार दान दे और उनकी सेवा करे उसको गोदान से बढ़कर पुण्य होता है (स) क्या अनाथगोशाला पहले भी थी (गो) जी हां (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो ब्रह्मपुराण में लिखा है—

† भाई ऐसा गोदान से फल होता है यह नहीं कि "मरी बछियां पुरोहित के घर"॥

अनाथानां गवां शीतात्कार्यस्तु शिशिरे मठः।
पुण्यार्थं यैश्च दीयन्ते शीतोयैर्धनानि च ॥
एवं कृते महीं पूर्णां रत्नै र्दत्वा फलं लभेत्।
गोप्रदानेन यत्पुण्यं गवां संरक्षणाद्भवेत् ॥

अर्थ—अनाथ गऊओं के शीत के बचाव के लिये जो मकान बनवा देते हैं और जो किञ्चित् (थोड़ा) दाना चारा पानी देते हैं और जो शीतकाल में गऊओं को धुनी तपाते हैं (या वस्त्र ओढ़ाते हैं) वे रत्नों से पूर्ण संपूर्ण पृथ्वी दान के पुण्य का फल पाते हैं ॥ और गोदान का पुण्य उनको गोसेवा से मिलता है (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो भारत में लिखा है—

कृत्वा गवार्थं शरणं शीतवातसमं महत्।
आसप्तमं तारयति कुलं भरतसत्तम ॥

अर्थ हे भरत जो शीत उष्ण वायु बचने योग्य फैला घर (गोशाला) बनवाते हैं वह अपने ७ पुरुषों को तारते हैं यह सत्य है (स) हमने सुना है कि अनाथगोशालाओं को धन देनेवाले सभासद खा जाते हैं (गो) जो हिन्दू के वीर्य से होगा वह तो ऐसा करेगा नहीं ॥ यदि ऐसा कोई क-

---

...की मुक्त में पुण्य लूट लो अनाथगोशाला में यथानुसार दान देकर ॥

रता भी होगा तो वह पापही नर्क में जायगा, धनादिको गोशाला में दान देनेवाले को तो पुण्यही है। और जो, कोई निन्दा करते हैं उनको तुम सत्य समझना कि वह पिछले जन्म में यवनादि गोद्रोही को सन्तान थे और किसी कर्म के कारण हिन्दू के घर में जन्म ले लिया है परन्तु उनका पिछला संस्कार नहीं गया इस कारण गोनिन्दक हैं भाइयो उन गोद्रोहियों से बचो यदि कहो कि वह गोशाला का अप्रबन्ध देखकर निन्दा करते हैं। हां यदि वह गउ के हित कारी होते तो अनाथ गौवों के अप्रबन्ध करनेवाले अथवा उनके धन खानेवाले को पकड़ उनका मुंह संसार में काला करते और स्वयं उसका प्रबंध करते और पुण्य लेते परन्तु यह तो बनताही नहीं उलटा निन्दा कर पाप सिर पर लेते हैं (स) क्या गोनिन्दा से पाप लगता है (गो) जी हां (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो शिवपुराण में शिवजी कहते हैं—

ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनां।
विनाशयन्ति कार्याणि ते नराः नारकाः स्मृताः॥

अर्थ—शिवजी कहते हैं कि जो नर गऊ, ब्राह्मण या कन्या, स्वामि, मित्र, तपस्वी इनके कार्य में कुछ भी विघ्न करता है वह घोर नर्क में पड़ता है (स) क्यों जी जिसको गोशाला में चन्दा देने का सामर्थ्य न हो वह क्या करे (गो)

वह अपने भोजन से एक मुट्ठी अथवा जितना उससे बने गोघट में जमाकरे जब भर जावे गोशाला में पहुँचा दिया करे और गोशाला में आकर गऊओं की घडी आधी घडी सेवा किया करे उसको गोदान का बड़ा फल मिलेगा (से) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो—

गवां ग्रासप्रदानेन स्वर्गलोके महीयते ।
सदागावः प्रणस्यास्तु संवेशानेन पार्थिव ॥

अर्थ—जो सत्यवादी गोसेवा शमदम युक्त वेद शास्त्र के वेत्ता भोजन के पूर्व अग्राशन गऊ को देते हैं, वे एक वर्ष में १००० गोदान का पुण्य पाते हैं।

दत्वा परगवे ग्रासं पुण्यं स महदश्नुते ।
सिंहव्याघ्रभयत्रस्तां पङ्कलग्नां जलेगताम् ॥

अर्थ—पराई गाय को एक ग्रास अन्नादि थोड़ा सा भी देने से उसको बड़ा पुण्य होता है और सिंह व्याघ्र के भय से जल कीचड में डूबती हुई गऊ की जो रक्षा करते हैं उनको बड़ाही पुण्य होता है (स) कैसा पुण्य होता है (गो) देखो भविष्यतपुराण में यह कहा है—

तीर्थस्नाने तु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यंहरिसेवने ॥
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेवतपःशुचः ।

भुविपर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत् ॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु प्रायश्चित्तानि शुद्धति ।
सर्वदेव गवामंगे तीर्थानि तत्पदेषु च ॥

अर्थ – तीर्थ स्नान का जो पुण्य, ब्राह्मण भोजन का जो पुण्य, हरिसेवा का जो पुण्य, सब व्रतों का जो पुण्य उपवास रहने का जो पुण्य और सर्व तपों का जो पुण्य आचार रहने का जो पुण्य देशाटन करने का जो पुण्य सत्य भाषण का जो पुण्य सर्वयज्ञों का जो पुण्य और सब देवताओं के पूजन का जो पुण्य, वह गोसेवा करने से प्राप्त होता है – क्योंकि सब देवता गऊ के अंग २ में रहते हैं और जिस को पुत्र की अथवा जिस वस्तु की कामना हो वह गऊ माता की सेवा से मिल सकती है (स) ऐसा कहा लिखा है (गो) देखो।

न गोषु तुल्यं धनमस्तिकश्चिद्-
दुह्यन्ति वाह्यन्ति हरन्ति पापम् ।
तृणानि भुक्त्वाह्यमृतं स्त्रवन्ति
विप्रेषु दत्तं कुलमुद्धरन्ति ॥

अर्थात – गऊ के समान कोई अन्य पशु नहीं है और न कोई इसके बराबर धन है और इसके दर्शन मात्र

सेही पाप भी नाश हो जाते हैं और दूसरे इसके बराबर किसी और पशु का दुग्ध भी नहीं है अर्थात जो नर नारी गऊ की प्रेम से सेवा करेंगे उनको यश धन पुत्र अवश्यही हो जायेगा (सं) पुत्र धन कैसे होगा (गा) गो सेवा से (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) देखो।

गाश्च शुश्रूषते यश्च समं वेति च सर्वशः।
तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सु दुर्लभान्॥

अर्थ—श्रीभीष्मपितामह जी युधिष्ठिर महाराज से कहते हैं कि जो पुरुष गौ की तृण जल से सेवा करे और सर्वत्र समदृष्टी रहे उस पुरुष के अर्थ गौवें सन्तुष्ट हो कर दुर्लभ वरों को देती हैं॥

श्रीजाबालि ऋषि ऋतभर राजा से कहते हैं।

अपत्यप्राप्तिकामस्य संत्योपायास्त्रयः प्रभो।
विष्णुप्रसादात् गोश्चापि शिवतुष्ट्याथवा भवेत्॥

(भा०) सतति अर्थात् पुत्र प्राप्ति के इच्छुको को तीन उपाय हैं विष्णुप्रसाद, गोसेवा, और शिव की प्रसन्नता।

तस्मात्वं कुरु वै पूजां धेनोर्देवमयीतनोः॥
पद्मपु० २३ ३०

इससे हे राजा तू (यवसादि से) गौ की पूजा कर देवमयी तनु है । सुनो

यो वै नित्यं पूजयति गामिह यवसादिभिः ।
तस्य देवाश्च पितरो नित्यं तृप्ता भवन्ति हि ॥
२५ अ० ३० पद्म०

अर्थ—जो पुरुष नित्यप्रति गौ को यवसादि करके पूजते हैं उससे देवता पितर नित्य प्रसन्न होते हैं ।

यो वै गवाह्निकं दद्यान्नित्यमेव शुभव्रतः ।
तेन सत्येन तस्य स्युःसर्वे पूर्णा मनोरथाः ॥
२६ अ० ३० पद्मपु०

अर्थ—जो पुरुष गौ के दिनभर के चरित्राय का नियम से देवे अच्छे व्रत युक्त हो कर तो उस पुरुष के उस सत्य करके सब मनोरथ परिपूर्ण होंगे । (स) इस विधि सेवा करने से पुत्र होवेगा (गो) यदि इस विधि से गो सेवा करे अर्थात् जो पुरुष को चाहिये कि प्रीतिपूर्वक गऊ को चारा पानी से सन्मान करें उनके स्थान को अति पवित्र और उज्वल रक्खें और समयानुसार स्नानादि करावें और मुख नित्यप्रतिही धोया करें और नित्यप्रति पिछाड़ी का भी अग धोया करें और गौ के शरीर पर छोटे २ जीव किलनी आदि जो कुछ लिपट रहे हों उनको नित्य

प्रति दूर किया करे और गौ को उच्छिष्ट वस्तु कदाचित् भोजनार्थ न दे और उच्छिष्ट हाथ से कदाचित् गौ को स्पर्श भी न करे, खाद्य पदार्थ भूसा, तृण, अन्नादि अत्यन्त उत्तमरीति से शुद्ध करके खवावे, और जल निर्मल शुद्ध पिलावे और गौ के बछड़े को दुग्ध से कदाचित् भूखा न रक्खे उसका भी उतनाही आदर सत्कार करे जितना गाय का ॥ और गौ के निमित्त निम्नलेखानुसार चूर्ण बना के रक्खे अर्थात् भांग, निमक, राई, अजवायन, इन चारों चीजों को मिला के चूर्ण बना ले । भांग, अजवाइन, राई, इन तीनो चीजों को बराबर लेना चाहिये और इन तीनो चीजों के बराबर निमक लेकर चूर्ण करे, उपरोक्त चूर्ण महीने में चार बार तो अवश्यही देवे क्योंकि यह चूर्ण प्रत्येक फसल में लाभदायक है और सेंधे निमक का ढेला गौ के साम्हने नित्यप्रति धरा रहे क्योंकि सेंधे निमक का ढेला चाटने से गौ को बड़े लाभदायक गुण होते हैं।

और पुत्रकांक्षिणी स्त्री को चाहिये कि प्रातःकाल चार घड़ी के तड़के उठ के प्रथम अपनी शारीरिक क्रिया करके पश्चात् सूर्योदय के पहले प्रथम गौ सेवा से फरागत हो जावे तत्पश्चात् स्नान करके नित्य प्रति गौ का पूजन गंध माल्यादिक से विधिपूर्वक करे जैसे महारानी सुदक्षिणा करती थीं ।

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां
सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता ।
प्रणम्य चानर्च्च विशालमस्याः
शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ॥

सुदक्षिणा ने हाथ में अक्षतवाला पात्र लेकर उस गौ की प्रदक्षिणा की और उसके विशाल शृङ्गों के बीच के स्थान को मानो अर्थसिद्धि के द्वार के नाई पूजन किया।

पूजन करते समय ईश्वर से प्रार्थना करे कि हे जगदीश्वर आप की आज्ञानुसार मैं नित्यप्रति गौसेवा यथाविधि करती हूं इसके प्रतिफल में मेरे सत्याथ धार्मिक गोसेवक पुत्र उत्पन्न हो, जैसे राजा दलीप को हुआ था।

ततः समानीय स मानितार्थी
हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।
वंशस्य कर्तारमनन्तकीर्तिं
सुदक्षिणायां तनयं ययाचे ॥

तब उन सम्मान के प्रार्थी राजा ने जिन्हों ने स्वय अपने हाथों से वीरशब्द को प्राप्त किया था हाथ जोड़ कर वंश के रखनेवाले और अनन्त कीर्तिवाले पुत्र की उत्पत्ति सुदक्षिणा में होने की प्रार्थना की।

इसी प्रकार गौ माता से भी प्रार्थना करे।

हे प्यारे सज्जन पुरुषो थोड़ी विधि पुत्रकांक्षित स्त्री को और भी करना चाहिये, जिस दिवस ऋतुमती हो उस दिवस से ठीक गणना करके चौथे दिन स्नान करके गोमूत्र पान करे पांचवें दिन भी करे छठें दिवस भी करे पश्चात आठवें दिन से लगा के सोलहवें दिन पर्यन्त नित्यप्रति पंचगव्य बना के प्रातःकाल सेवन करे और अपने पुरुष को भी करावे पंचगव्य इस प्रकार बनता है गोघृत, गोदधि, गोदुग्ध, शक्कर और शहद पांचो चीज मिला कर पानी के संयोग से छान कर पीये और पुत्रकांक्षित स्त्री को चाहिये कि ऋतुधर्म से (छठी) (आठवीं) (दसवों) (बारहवीं) (चौदहवो) (सोलहवीं) इन छ रात्रि में अपने पुरुष के पास जाय अन्यथा विवहार कभी न करे और पुरुष को चाहिये कि जब ऋतुदान देने जावे तो प्रथम गोदुग्ध पान करे और ऋतुदान के पश्चात् भी पान करे यदि उपरोक्त विधि सपति प्रकार से ठीक २ करे तो अवश्यमेव बरस दिन भीतर पुत्र उत्पन्न होयेगा और जिस समय से पुत्र की इच्छा से गोसेवा धारण करे उसी समय यह भी संकल्प कर ले कि यदि मेरे पुत्र उत्पन्न होयगा तो मैं एक दिवस पुत्र सहित अनाथ गोशाला में जाकर गौओं का आदर पर्वक पूजन करूंगी और चारा दाना दूंगी। पुत्र उत्पन्न होने पर हर्ष

पूर्वक गाजा बाजा सजाय भाई बिरादरियों की स्त्रियों को संग ले गोशाला में जाय गौओं का आदर पूजन करे और एक दिवस अपनी तरफ से चारा दाना दे। अवश्य पुत्र होगा।

(२) जिस स्त्री के पुत्र उत्पन्न हो के जीवत न रहता हो उस स्त्री को चाहिये कि उपरोक्त लेखानुसार गौ सेवा धारण करे तो तीन वर्ष तक सेवा करनी तो उसका पुत्र चिरंजीव हो सक्ता है परन्तु दो बात उसको अधिक करना चाहिये एक तो गौ के बछड़ा या बछिया जो कुछ हो उसकी अत्यन्त अधिक सेवा करे क्योंकि जिस प्रकार गौ संतति संतुष्ट होगी उसी प्रकार उसका पुत्र भी नीरोग्य होकर जीवत रहेगा दूसरे उसको चाहिये कि वर्ष में दो बार अनाथगोशाला में गौओं की उपरोक्त विधि के अनुसार पूजन कर खान पान से सनमान करे।

(३) समस्त स्त्रियों को चाहिये कि अपने २ पति और पुत्रों की दीर्घायु और नीरोगता और धन सम्पदादि की प्राप्ति के लिये उपरोक्त गौ सेवा को अवश्यमेव धारण करें।

(४) प्रत्येक पुरुष और स्त्रियों को चाहिये कि अपने २ कार्यों के सिद्धों के निमित्त गोशाला की गौओं को चारा डलवाने का नेम किया करें इससे उनके समस्त कार्य सिद्ध होंगे।

(स) जिस विधी से गऊ के दूग्धादि और पंचगव्य के पान करना कहा है यदि इसी विधी से भैंस बकरी आदि का दूध, घृत, दही, मूत्र, गोबर, का पंचगव्य बना पीवे तो क्या पुत्र न होवे? (गो) भाई जैसा गुणगाय के दूध, घृत, दही, मूत्र गोबर में है और पशुओं के दूध, घृत, आदि में नहीं है यदि होते तो हमारे ऋषी मुनी उनको भी दूध, घृतादि से पंचगव्य बनाना लिख जाते परन्तु उन्हों ने केवल गऊही के दुग्ध घृतादि का ही पंचगव्य बनाना कहा है जो हम पीछे बतला आये हैं। (स) गऊ के दूध, घृत, दही, मूत्र, गोबर में क्या गुण है।

> गव्यं पवित्रं च रसायनं च,
> पथ्यं च हृद्यं बलपुष्टिदं स्यात्।
> आयुःप्रदं रक्तविकारपित्त-
> त्रिदोषहृद्रोगविषापहं स्यात्॥
>
> —हारीत संहिता० अ० ८ क्षीरवर्ग०

श्रीआत्रेयमुनी जी कहते हैं कि गोदुग्ध पवित्र, रसायन और पथ्य है (हृद्य) हृदय को हित कर नेवाला, (बलपुष्ट) बल पुष्टि देनेवाला, (आयु प्रद) आयुवर्द्धक (रक्तविकार) रक्त सबन्धी रोग (पित्तत्रिदोष)

या पित्त त्रिदोषादि करनेवाला (हृद्रोग) पीड़ा व विष इन सब को नाश करनेवाला है ।

द्वितीय श्रीमुनिवर धन्वन्तरि ऋषि महाराज कहते हैं ।

जीर्णज्वर श्वासकासशोष क्षयगुल्मोन्माटोदर मूर्छामद भ्रमदाहपिपासाहृद्दन्ति पांडुरोग ग्रहणी दोषार्श. शूलोदावर्तातिसार प्रवाहिका योनिरोग गर्भस्रावरक्तपित्तश्रमक्लमघ्नं । पाप्मापहं बल्यं वृष्य वाजीकरणं रसायनं ॥ मेध्यं वयः स्थापनमायुष्यं जीवनं वृंहणं सधानं वमनं । विरेचनीयमास्थापनं तुल्यगुणत्वाच्चौजसोवर्द्धनमिति ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणानां क्षुद्व्यवायव्यायामकर्षितानां च पथ्यतमम् । सुश्रुते अ० अन्नपानविधि ॥

(जीर्णज्वर) जो चिरकाल से ज्वर न छूटा हो (श्वास) दम (कास) खांसी (शोष) शरीर का नित्य प्रति सूखते जाना (क्षय) हस्तपाद पसली कांधा में पीड़ा के होते हुये निरन्तर ज्वर रहना (गुल्म) पेट में गोला हो जाना (उदर) जलोदर अलन्धर (मूर्छा) अचेत (बेहोशी) होना (भ्रम) भूलन (दाह) शरीर में जलन होना (पिपासा) तृषा

की विशेषता (हृत) हृदय में पीडा होना (बस्ति) नाभि के नीचे स्थल में कुछ २ पीडा सा होना, (पांडु) शरीर पीतवर्ण हो जाना (संग्रहणी) दस्त होना (अर्श:) ववासीर (शूल) पेट में एक प्रकार की पीडा (उदावर्त्त) पुरीषादिक जो मल मूत्र जँभवाई व तृषादि के वेग रोकने से उत्पन्न होता है (अतीसार) दस्तों का वेग से होना (प्रवाहिका) यह एक अतीसार का भेद है (योनि रोग) योनि सम्बन्धी विविध प्रकार को पीडा व खुजली व रज की वेगता न्यूनतादि (गर्भ स्राव) गर्भ का न ठहरना (रक्त पित्त) मुख नासिका गुदा से रक्त गिरना (श्रम) विना परिश्रम किये शरीर का थकित सा हो जाना, इतने उक्त लिखित रोग को (दुग्ध) आरोग्य करता है।

और (पाप्मापह) कायिक वाचिक मानसिक पाप कर्म (अर्थात् सर्व पाप तादृश रोग) (गो) दुग्ध सेवन से नहीं होते (बल्यं) बल प्रद (हृष्य) धातुवर्द्धक (वाजीकरणं) कामोत्साहक अर्थात् मैथुन क्रिया में भी अत्युत्तम उपयोगी व सहायी है (रसायन) जरा जो वृद्धावस्था और व्याधि जो रोग है इनका नाशक है (मेध्य) स्मृति व बुद्धिवर्द्धक (वयस्थापन) अवस्था स्तंभक (आयुष्य) आयुवर्द्धक (संधान) अस्थि टूट गई या चोटिल हो गई हो उसको दुग्ध अति हितकारी है। (वमन) वमन में उपयोगी (विरेचनीय)

रेचक (दस्तावर) (आस्थापन) निरूह यहिं अर्थात मलद्वारा पिचकारी लगाने में भी बड़ा उपयोगी हैं (तुल्य गुणत्वादि) जितने गुण चोज के उतनेही दुग्ध के हैं इस हेतु दुग्ध तेज का भी बढ़ैया है, (बाल हद्ध) बालक हद्ध घात या व्रण (जखम) करके जो चीण हो गया हो और जो क्षुधा, मैथुन अति व्यायाम (डण्ड मुद्गर) करके क्षयत हो गया हो उसको दुग्ध अति हितकारी वा महौषधि किन्तु पथ्य है और गोदुग्ध तो?

अल्पाभिष्यदि गोक्षीरं स्निग्धं गुरुरसायन।
रक्तपित्तहरं शीत मधुरं रसपाकयो: ॥
जीवनीय तथा वातपित्तघ्नं परमं स्मृतम् ॥ सुश्रुते

(अल्पाभिष्यदि) किञ्चित पेट को अफरा, अर्थात् फुलाता है (स्निग्ध) चिकण (गुरु) भारी (रसायन) जुरा व्याधिनाशक (रक्त पित्त) रक्त पित्तादि रोग नाशक (शीत) शीतल (मधुर) मिष्ट (रसपाकयो) पाचक समय मधुर (जीवनीय) चिरजीवन प्रदायन शक्ति (वातपित्तघ्न) वातपित्तादि कोपनाशक (परम स्मृत) स्वर्ग शक्ति का हद्दिवर्द्धकही है।

(३) पदार्थविद्या व आर्षग्रथावलोकन व परीक्षा करने से भी ज्ञात होता है कि गो दुग्ध विद्यार्थी, योगी, लेखक न्यायाधीश, चित्रकार, गणितज्ञ, कवि विज्ञानशास्त्रपाठी,

वादी, शिल्पविद्यानुरागी इत्यादि जनों को तो अत्यन्त लाभदायक महौषधि है। किस हेतु कि इनको चित्त एकाग्र करना होता है। और यह भी गुप्त न रहे कि उक्त पुरुषों को जितनी सुगमता से गोदुग्ध दधि पचता है उसके सदृश मिश्र अन्न अर्थात् मांस नहीं पचता है।

पुष्टिकारन अरु बलकरन मुझ से पूछे कोय।
पय समान नरलोक में औषधि और न कोय॥

अब दुग्ध से जो मलाई आदि उत्पन्न हैं, श्रवण करिये।

सन्तानिका गुण वर्णन।

सन्तानिका पुनर्वातघ्नी तर्पणी बल्या स्निग्धा।
रुच्या मधुरा विपाका रक्तपित्तप्रसादनी गुर्वी च॥

सुश्रुते (सन्तानिका पुन०)

मलाई, वात को नाश करनेवाली (तर्पणी) तृप्त करनेवाली (बल्या) बलकार (स्नि०) चिक्कण (मधुरा) मिष्ट (मधुर वि०) पाचन समय में मधुर (रक्तपित्ती रक्तपित्त सम्बन्धी रोग निवारणी) (प्रसादिनी) शरीर का वर्ण (कान्तिवत्) करनेवाला (गुर्वी) पचने में देर से पचती है।

दुग्धोत्पन्ननवनीतगुणाः।

क्षीरोत्थं पुनर्नवनीतं सुतकाष्टं स्नेहमाधुर्यमति

शीतलं सौकुमार्य्यकरं चक्षुष्यं संग्राहि रक्तपित्त नेत्ररोगहरं प्रसादनं च ॥ इति सुश्रुत० ।

दुग्ध में उत्पन्न जो मैनू अर्थात् मकखन है (उत्कृष्ट) उत्तम (श्रेष्ठ) चिक्कण (माधुर्य) मधुर (यति शीतलं) अत्यन्त शीतल (सौकुमार्यकरं) देह कोमल करता है (चक्षुष्यं) नेत्र को हितकारी संग्रहनी दस्त के वेग को बन्द करता है (रक्तपित्त) रक्तपित्त संबंधी रोग, (नेत्र रोग) नेत्र के सर्व रोगों को नाश करता है (प्रसा०) शरीर को प्रफुल्लित रखता है।

गव्य दधि गुण।

स्निग्धं विपाकि मधुरं दीपनं बलवर्द्धनम्।
वातापहं पवित्रं च, दधिगव्यरुचिप्रदम् ॥
हात० अ० ८।

गौ का दधि (स्नि०) चिक्कण (विपाकि) पाचन समय में मिष्ट (दीपनं) अग्नि को दीप्त करता है (बलवर्द्धनं) बलवर्द्धक (वातापहं) वात नाशक (पवित्रं) पवित्र है (रुचि०) रुचि को बढ़ानेवाला है।

गो दधि से उत्पन्न नवनीत गुण।

नवनीतं पुनः सद्यस्कं लघुसुकुमारं।
मधुरकषायमीषदम्लं च शीतलं मेध्यं दीपनं

हृद्यं सग्राहि पितानिलहरं वृष्यम् विदाहि क्षय-
कासश्वासव्रणशोषार्दितापहम् ॥ सुश्रुत०

गो दधि से उत्पन्न जो नन्नू (सर्याक्तं) हाल का है, (लघु) पचने में हलका है (सुकुमारं) सुकुमारता करता है (मधुरकषाय) मिष्ट और कठा (ईषदम्लं) किंचित खट्टा भी है (शी०) शीतल है (मेध्य) बुद्धिवर्द्धक (दीपनं) जाठराग्नि वर्द्धक (हृद्य) हृदय को हितकारी (सग्रहनी) दस्त के वेग को निवारे (पित्ता०) पित्त वायु को नाश करे है (वृ०) बल वर्द्धक (अवि०) दाहनाशक (क्षय) खासी (श्वास) जम (व्रण) छिद्र अर्थात् शरीर में फोड़ा हो जाना (शोष) सूखा (अर्दितापह) वातादि उक्त रोगों का माखन नाशक है।

गव्यतक्रगुण।

गव्यं त्रिदोषशमनं पथ्य श्रेष्ठं तदुच्यते।
दीपन रुचिकृत् मेध्यमर्शोरविकारजित् ॥
हारी० ८ ॥

गव दधि से बना जो तक्र है, तीनों दोषों अर्थात पित्त वात कफ को शांत करता है। (पथ्ये श्रे०) पथ्य में श्रेष्ठ (दीपन) अग्निवर्द्धक (रुचिकृत) रुचि करनेवाला है और (मेध्य) बुद्धिवर्द्धक (अर्श) बवासीर (उदर) जलधर आदि को नाश करता है।

गो घृत गुण।

घृतं तु मधुरं सौम्यं शीतवीर्यमल्पाभिष्यंदि स्नेहनमुदावर्त्तोन्माद शूलज्वरानाहवातपित्तप्रशमनमग्निदीपनं स्मृतिमतिमेधाकान्तिलावण्यसौकुमार्य्यौजस्तेजो बलकरमायुष्यं मेध्य वयः स्थापनं चक्षुष्यं श्लेष्माभिवर्द्धनम्। पाप्मालक्ष्मीप्रशमनं विषहरं रक्षोघ्नं च विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहं चक्षुष्यमग्र्यं वृष्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरं ॥ सुश्रु०।

गो घृत मिष्ट है (सौम्यं) सोम अर्थात तीक्ष्ण नहीं (शीतवीर्य) शीतल है (अल्पाभिष्यंदि) कुछ किञ्चित् अफरा करता (गो) पिचकारी में भी उपयोगी है (उदा०) यह रोगमूत्र पुरीषादिक के रोकने से होता है (उन्माद) पागलपन (शूल) उदरपीड़ा (ज्वर) शरीर का उष्ण होना (अनाह) पेट फूलना (वातपित्तप्रशमन) उक्त रोगों व वातपित्त को शान्त करता है (अग्नि०) अग्निवर्द्धक है (स्मृति) धारणशक्तिवर्द्धक (अतिमेध्यं) अत्यन्त बुद्धिकारक (कान्ति) कान्तिकारक (सौकुमार्य्य) शरीर को सुकुमार करता है (ओज.) तेजकारक (आयुष्यं) आयुवर्द्धक (मेध्यं) बुद्धिवर्द्धक (वयः स्थापन) वृद्धावस्था को

दूर करता है (गुरु) गरिष्ट (चक्षुष्य) नेत्र को हितकारक (श्लेष्माभिवर्द्धन) कफ की वृद्धि करता है (पाप्मा) पाप जो रोग हैं उनको हरण करता (अलक्ष्मीप्रशमन) दरिद्रनाशक (अर्थात रोग ग्रसित होने से मनुष्य निरुद्यमी हो दरिद्री होता है सो घृत रोग नाशक है (विषहरं) विषनाशक (रक्षोघ्नं) ग्रहाटिक (नाम करके जो रोग है) उनको नाश करता है (विपाके मधुर) पाचन समय मधुर (शीत) शीतल है (वातपित्त विषापह) वातपित्त इनको नाश करता है (चक्षुष्य चस्यम) नेत्र को मुख्य कर हितकारक है (वृष्य) कामोत्पादक (गव्य स०) गाय का घृत जो है (गुणोत्तर) अधिक गुणकारक है ।

प्रिय गोपालको । घृत भी एक अपूर्व पदार्थ है कि जिसके गुणलाभ लिखने से इसी सदृश पुस्तक बन जाय सत्ती है अहा ह ह हा कैसाही षटरस पदार्थ व निपुण पाककर्त्ता हो परन्तु घृत पाकशाला में न होने से स्वादु रहित और तमोगुणप्रदव्यञ्जन होंगे सत्य है "भोजनस्य घृतं सार' भोजनों का साराश घीहै यदि गोदुग्ध दधि घृत से पूर्व अमृतरूप पदार्थ न होते तो आज हम सब उष्ण देश निवासी भारतवासी मधुर रसीले अद्भुत अनोखे अति स्वादिष्ट कोमल दिव्य भोजनो से जो रक्तवर्द्धक, शक्तिवर्द्धक, बुद्धिवर्द्धक कान्तिकारक, धातुपुष्टक, मनोत्साहक कामो

गोवर्ग आरोग्य प्रद है, निराश रहने से निराश तो (गोवध से) पर्भों हैं किन्तु सप्रवल पदार्थ की (द्रव्य व अर्थ) होते हैं उससे भी रहित होवेंगे।

गोमूत्र गुण।

प्रायः परीक्षा करने व विज्ञवैद्य महाशयों व आर्ष ग्रंथाशय से भली भांति ज्ञात होता है कि गोमूत्र का सेवन व मर्दन व अञ्जन यथायुक्ति कुछ काल करने से उदर सम्बन्धी सर्व प्रकार के रोग कृमि जलन्धर पिलही गोलादि व नेत्र की फूली जाला नाखूनादि व खाज, छाजन, गञ्जा, सिउहां व फोड़ा फुन्सी कुष्टादि सब नाश होते हैं, यथा—

> कासं सकुष्ट जठरं कृमिकोपनालं।
> गोमूत्रमेकमपि पीतमहानिहन्ति॥
>
> हारी० सं० अ० ८।

श्रीआत्रेयमुनि कहते हैं कि, जम, सर्व कुष्ट व पेट के सर्व प्रकार के कीड़े व घरियादि केवल गोमूत्र पीने से नाश होते हैं। द्वितीय, श्रीधन्वन्तरी मुनीजी कहते हैं कि,

> गोमूत्रं कटुतीक्ष्णोष्णं सक्षारत्वान्नवातलम्।
> लघ्वग्निदीपनं मध्यं पित्तलं कफवातजित्॥
>
> सुश्रुते।

गोमूत्र कटु, तीक्ष्ण, उष्ण और क्षार गुणयुक्त होने से

वात को नाश करता है, पचने मे हलका है। जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है, (मेध्य) बुद्धिवर्द्धक (पित्त,) पित्तकारक और कफ वात नाश करता है। इत्यादि।

गोमय गुण।

प्रिय बन्धुजनो। गऊ का गोवर भी अन्य पशुओं की अपेक्षा बड़ा गुणकारी, व लाभदायक है, अर्थात् पाक शाला व यज्ञशाला व स्थानादि सपूर्ण स्थान लेपन से शुद्ध व चित्त हर्षक होते हैं * गोमय, चिकित्सक महाशयों के औषधादि शोधन में भी जो विषयली है (जैसे भिलावा कुचलादि) उपयोगी होता है, और बर्रादि अल्प विषयी जन्तुओं के (काटने के स्थान में लेपन से) विष नाश करने को तो रामबाणही है, (३) जो कई वेर परीक्षा से निश्चय हुआ है केवल गोमय का तैल (जो पाताल यन्त्र द्वारा निकलता है) दाद खाज, छाजन जिन्हा में जो के मेही पुराने हों मर्दन करने से निर्मल हो जाते हैं।

(४) गोमय की भस्म क्षार जल को भी मृदु करती है और दाद के निवारणार्थ भी जो कुछ काल तक मर्दन करता रहे तो एक अपूर्व परीक्षित महौषधि है।

---

* यद्गोमयेन परिलेपितभूमिभागे। तेनैव लेपितगृहेपि वसन्ति विप्राः। तेषां कुले भवति नाऽसुरभूतबाधा, व्याधि कुमारतज्ञतोपि न तच याति॥

(५) पदार्थविद्या या कृषिविद्या द्वारा भी गोमय बड़ा लाभदायक व उपकारी ठहरता है अर्थात् गोमय के उपलों को भोजन सम्बन्धी पदार्थों तले जलाने व तपाने से विष वेत वायु नहीं होगी और भोजन भी गुणकारी होता है, और कृषी को तो गोबर महौषधिही है, कैसाही बिगड़ा बञ्जर ऊसरीला खेत क्यों न हो इसकी खाद (खात) पड़तेही बनकर उपजाऊ (मैरोख्वेज) हो जाता है, कि जिससे अन्नादि व कन्दमूल फलादि की वृद्धि होकर मनुष्य मात्र का पोषण होता है।

(स) गोसेवा से किसी के पुत्र हुआ भी है? (गो) जी हां (स) किनके? (गो) देखो वे श्रीदिलीप महाराज का इतिहास रघुवंश को देखो गोसेवा से उनके पुत्र हुआ है।

सन्तानकामाय तथेति कामं
राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं
पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेश॥

नन्दिनी ने सन्तान मांगते राजा दिलीप को अवश्य होनी यह वचन सुनाकर आज्ञा दी कि हे पुत्र मेरे दुग्ध को पत्तों के दोने में दुह कर तुम पीओ। ६५।

स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा
सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम्।

पपौ वसिष्टेन कृताभ्यनुज्ञः
शुभ्रं यशोमूर्तमिवातितृष्णः ॥

अगर्हित स्वभाव साधुओं में प्रेमवान वसिष्ट से आज्ञा पाय राजा दिलीप ने बछड़ा और बहुत से बचा हुआ नन्दिनी के दुग्ध को (अतितृषितशुभ्र मूर्त यश की भांति) पीया ॥ ६८ ॥

अथनयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिवद्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम् ।
नरपतिकुलभूत्यै गर्भमाधत्तराज्ञी
गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः ॥

इसके उपरान्त सुदक्षिणा अत्रि महर्षि के नेत्रों से समुत्पन्न चन्द्र की स्वर्ग की भांति वा अग्नि से विक्षिप्त तेज गंगा की तरह राजा दिलीप के कुल भूति के अर्थ बड़े २ लोकपालों के तेज से अनुप्रविष्ट गर्भ को धारण करती हुई॥७५॥

और देखो—शौनकजी सुमतिजी से पूछते हैं कि यह सत्यवान नामक महापराक्रमी तेजस्वी राजा किसका पुत्र है, तब सुमतिजी कहते हैं, कि

धेनुं प्रसाद्य बहुभिर्व्रतैर्यं प्राप तत्पिता ।
अतः भराख्यो जगती विदितः परधार्मिकः ॥

रामाश्वमेध ।

(भावार्थ) अंतीभर नामक राजा जो बड़ा धर्मात्मा प्रसिद्ध जगत् में हुआ है उसने, नियमपूर्वक गौ की सेवा करी थी तब,

गौः प्रसन्ना ददौ पुत्रमनेकगुणसंयुतम्।
सत्यवान् नामशोभाढ्यं तं जानीहि नृपात्मजम्॥
रामाश्वमेध।

(भावार्थ) गौ ने प्रसन्न होकर (अर्थात् उसके दुग्ध से वीर्य पुष्ट हो) अनेक गुण विभूषित सत्यवान् नाम शोभायान् पुत्र दिया।

(म) जब कि आप के धर्मग्रन्थों में गौ की इतनी बड़ाई लिखी है तो फिर आपके ऋषी मुनी इसको मारकर क्यों यज्ञ किया करते थे इससे यह पाया जाता है कि यह सब वाक्य जो आप ने हमें सुनाये हैं उन ऋषियों के बनाये हुए नहीं हैं जो यज्ञ में मनुष्य घोड़ा गाय बकरादि पशुओं को मारकर यज्ञ करते और खाते थे (गो) भाई हमारे ऋषी तो यज्ञ में किसी जीव को न मारते और न किसी जीव के मांस को खाते थे और न कहीं मारने की आज्ञा लिख गये हैं (म) देखो हम आप को इसका प्रमाण देते हैं। देखिये ऋग्वेद की मण्डल १ सूक्त १६४ मंत्र ३५ में लिखा है "यज्ञो भुवनस्य नाभिः"।

अर्थात् यज्ञ संसार की नाभी है फिर तैतरीय ब्राह्मण मे यों लिखा है।

यज्ञेन हि देवा दिवं गताः यज्ञेनासुरानपनुदन्त यज्ञेन द्विषन्तो मित्राणि, भवन्ति यज्ञे सर्वमधिष्ठितं तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति ॥

अर्थात यज्ञ से देवतागण स्वर्ग को प्राप्त हुए यज्ञ से उन्होंने असुरों को निकाल दिया यज्ञ से शत्रु मित्र होते हैं सब कुछ यज्ञ में है। इस कारण बुद्धिमान लोग यज्ञ को परम पदार्थ कहते हैं। इससे पाया जाता है कि पिछले समय में यज्ञ को सब कर्मों से हिन्दू श्रेष्ठ मानते थे (गो) तो ऊपर लिखे वचनों से आपका क्या तात्पर्य है (स) इस से हमारा यह तात्पर्य है कि यज्ञ में मनुष्य, गाये, घोड़ा, बकरादि पशु बलिदान दिये जाते थे (गो) भाई यज्ञ में जीवहिंसा समझना आप की भूल है क्योंकि यज्ञ का अर्थ हिंसा नहीं है और जो आपने कहा कि "यज्ञो भुवनस्य नाभि." इसका अर्थ यह है कि लोक समुद्र का आकर्षण करनेवाला विष्णु अर्थात् यज्ञ है क्योंकि यज्ञ शब्द से विष्णु का ग्रहण होता है देखो श॰ ब्रा॰ १ अ॰ १।

यज्ञो वै विष्णुः। वेवेष्टिव्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः परमेश्वरः।

अर्थात् व्यापक परमेश्वर का नाम यज्ञ है हिंसा का नहीं, हां यदि यज्ञ में जीवहिंसा करने में दोष न होता तो रावणादियों को हमारे ऋषी राक्षस न कहते क्योंकि वह यज्ञ में जीवहिंसा करते थे परंतु हमारे ऋषी मुनी न हीं करते थे यदि करते होते तो मनाही क्यों करते (प्र) कहां मना किया है (उ) देखो महाभारत अनुशासन पर्व के ११६ अध्याय के १८ श्लोक में व्यासजी कहते "अहिंसा परमो यज्ञः" अर्थात हिंसा नहीं करना यही परम यज्ञ है, भला जब व्यास जी ऐसा लिखते हैं तो फिर ऋषियों को झूठा दोष लगाना यह सज्जनों का काम नहीं है आप को किसी मांसहारी ने ऐसा बता दिया होगा फिर यज्ञ में तो दूर रहा ऐसे भी कोई जीव मारने की आज्ञा नहीं है फिर यज्ञ पवित्र स्थान में जीव मारना कैसा? (प्र) देखो जैमिनी जी उत्तर मीमांसा में यह लिखते हैं।

उपाकरणम् उपानयनम् अक्षयायन्धो यूपे- नियोजनम् । संज्ञपनम् विशसनम् इत्येव मा द्यः मवनीयस्य पशोधर्माः भवेयुः—

अर्थात् यज्ञ शब्द का अर्थ है पशु का अर्पण करना यज्ञ स्थान पर ले जाना बांधना यूप में लगाना मध करना देह काटना और याजकों को बांटना॥

फिर मनुजी लिखते हैं।

बभूवुर्हिपुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणां ।
पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्र सवेषु च ॥
म० अ० ५ श० २३

अर्थात् प्राचीन ऋषियों के यज्ञ करने में भक्ष्य पशु पक्षियों का पुरोडाश हुआ इसलिये जो पशु पक्षी भक्षण योग्य हैं उनके बध में दोष नहीं, देखिये यज्ञ में पशु वध करना सिद्ध हुआ वा नहीं और आप कहते हैं कि यज्ञ में जीव हिंसा नहीं होती थी (गो) सुनिये प्रथम वा पूर्व वाक्य जो आपने कहा सो ठीक नहीं क्योंकि मीमांसा नाम तो जैमिनी प्रणीत मूल सूत्रों का है उनमें तो हिंसा कहीं भी नहीं है और यह वाक्य शवर भाष्य का है पूर्व मीमांसा दर्शन कहना आपको भूल है और इस वचन का अर्थ जीव हिंसा का नहीं है—उसका यह अर्थ है यूप को अर्थात् खंभे को यज्ञ के अर्थ अर्पण करना यज्ञ स्थान पर ले जाना बांधना अर्थात् जमीन में गाड़ना अर्थात् खड़ा करना बध करना अर्थात् काटना, साफ करना और याचकों * को बांटना अर्थात् बढ़इयों को इनाम देना या उसको मजदूरी देना यह अर्थ है यह नहीं कि पशु को

* बढ़ई, नाई, धोबी, कहार, कोहार, यह याचक कहाते हैं, अभी तक इनको शुभ कार्यों में खान पान दिया जाता है।

मारना (२) क्योंकि यज्ञ तो घृतादि पदार्थों के करने को और (३) आज्ञा परमेश्वर देता है पशु मारने की तो आज्ञा नहीं देता है देखो—

सुप्रत्रवभागास्थेया इहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः इमांवाचं सुविश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन्‌ वर्हिष मादय ध्वुंस्वाहा वाट ॥ २८ ॥

अर्थ—ऐ विद्वानों तुमने उत्तम न्याय से विद्या के आसन पर अस्थिति की है तुम्हारी बुद्धि सब प्रकार से हरएक पदार्थ का ठीक धारना करती है, तुम चारों वेदों का उपदेश करते हो तुम को चाहिये कि अपने ज्ञान से घृतादि पदार्थों को हवन में छोड़ो और उत्तम वचनों से सुख बढ़ानेवाली क्रिया को प्राप्त होकर आनन्ददायक ज्ञान कर्मकाण्ड में आनन्द प्राप्त करो वैसेही औरों को भी यह आनन्द पहुचाओ और इस ज्ञान को इस तरह वेदवाणी की प्रशंसा करते हुये तुमलोग अपने विचार से उस क्रिया में जिससे तुमको ज्ञान प्राप्त होता अपनी उन्नति करो और उन पदार्थों को जो तुम्हारे कर्मों से प्राप्त होते हैं स्वयं धारण करके औरों को धारण कराओ और इस ज्ञान और कर्मकाण्ड करते हुये आनन्द रहो, देखो यज्ञ में घृतादि पदार्थों का हवन करना लिखा है पशुओं का मारना तो नहीं कहा और आप जो मनुजी के—

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ।

इस वाक्य से जीव हिंसा समझते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि —

मृगपक्षिणां मृगपक्षिभिर्भक्ष्याणां पदार्थानाम् पुरोडाशा बभुवुः। अत्र कृत्ययोगे कर्तरि षष्ठी।

अर्थात् वन में रहने के कारण जब ऋषि लोगों को ग्राम के अन्न घृतादि पदार्थ नहीं पहुंचते थे तब ऋषि लोग वन के शुद्ध पदार्थों को मृग पक्षियों का जो भोजन फल फूलादिक थे उन पदार्थों का हविष्य बना के यज्ञ करते थे जीवों को मारकर हवन नहीं करते थे (म) आप कहते हैं कि जीव हिंसा नहीं होती थी परन्तु वेद में तो भैंसा, बकरा, घोड़ा, गाय मनुष्य बलिदान करना लिखा है—

• देखो ऋग्वेद के ४ अष्टक १ अध्याय १५ सूक्त को

सखा सख्ये अपचतूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्रीशतानीचीयक्षता महिषामघोमास्त्री सरांसि मघवासोम्यापा :

इससे विदित होता है कि एक समय तीन सौ भैंसों का यज्ञ हुआ और दूसरे स्थान में कोई भक्त प्रार्थना करता है कि एक सौ भैंसों का यज्ञ होवे। (गो) प्रथमतो आपने

गंमही अशुद्ध कहा दूसरे अर्थ भी उलटपलट किया है। देखिये मंत्र शुद्ध यह है—

सखा सख्ये अपचत्तूय मग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्रिशतानि त्रिमकमिन्द्रा मनुषः सरांसि सुतंपि वद्वृत्न हत्याय सोमम् ॥

ऋ० मं० ५ अ० २ सू० १८ मं० १

और इसका यह अर्थ अर्थात् "अत्र वाचकलुप्तोपमाऽलङ्कारः" अर्थात् जैसे अग्नि और सूर्य्य शीघ्रही इस जगत् के मध्य में तीन भुवनों को प्रकाशित करता हुआ तड़ागों का पान करता है और मेघ के नाश करने के लिये बसाये गये ऐश्वर्य्य को पचाता है वैसेही मित्र बुद्धि या कर्म्म से मित्र के लिये सहित बड़े पशुओं के तीन सैकड़ों की रक्षा करे अर्थात् जैसे सूर्य्य ऊपर नीचे और मध्यभाग में वर्त्तमान स्थूल पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे उत्तम मध्यम और अधम व्यवहारों को राजा प्रगट करे और सब साथ मित्र के सदृश बर्ताव करे यह अर्थ है (स) महिष शब्द का अर्थ आपने क्या किया है (गो) महिष शब्द का अर्थ—

महति पूजयति स्व पुरुषार्थे नीतिमाहिषो महान् राजा वा उद्योगवान् पशुर्वा—

अर्थात् महिषा का अर्थ श्रेष्ठता प्रकरण में महान् नीति प्रकरण में राजा कर्तव्य प्रकरण में उद्यमवान और कृषि प्रकरण में पशु लिया जाता है देखो निघण्टु अ० ३ खं० ३ "महिषामहन्नाम्"—यहां महिषा शब्द का अर्थ महान का अर्थ बड़े का है अर्थात् श्रेष्ट का अर्थ है (म) वेद में तो बकरा मारना लिखा है देखो यजुर्वेद के यह मंत्र है।

एष छाग: पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव:। अभा पूषा: प्रथमो भाग एति यज्ञेन्द्रेवेभ्य: प्रतिवेदयन्नज:॥

इन मन्त्रों से अजामेध सिद्ध होता है क्योंकि छाग: नाम बकरे का है (गो) यहां छाग नाम बकरे का नहीं (म) और का है (गो)—

छादिश्य गर्न्। किद्भवति॥ छिद्यते छिनतीति वा छाग:।

अर्थात् कर्मकाण्ड प्रकरण में काष्ट को काटकर हवन कुण्ड में डालने का नाम छाग है और दुग्धादि प्रकरण मे छाग का अर्थ छेरी का है सो यहां छाग नाम छिन्न भिन्न का है देखो हम आपको पूरा मंत्र दिखाते हैं और उसका ठीक अर्थ बताते हैं—

एषछागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥

अर्थात् विद्वानों को चाहिये कि जो यह प्रथम सब विद्वानों में उत्तम पुष्टि करनेवाले वा सेवने योग्य पदार्थों को छिन्न भिन्न करता हुआ प्राणी वेगवान् घोड़े के साथ प्राप्त किया जाता और जिस सब ओर से मनोहर पुरोडाश नामक यज्ञ भाग को पहुंचाते हुवे घोड़े के साथ पदार्थ को सूक्ष्म करनेवाला उक्त भाग को उत्तम कीर्तिमान होने के लियेही पाकर प्रसन्न होता है वह सदैव पालने योग्य है और जो दूसरे ऋचा है वह यह है—

यद्धविष्यमृतुशोदेवयानंत्रिर्मानुषाः पर्यश्वन्नयन्ति ॥ अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञन्देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः॥ य०अ०२५मं०२१॥

अर्थ—जो मनुष्य ऋतु २ के योग्य होम में चढ़ाने के पदार्थों के लिये हितकारी दिव्य गुणवाले विद्वानों को प्राप्ति करानेहारे शीघ्रगामी प्राणी को तीन बार सब ओर पहुंचाते हैं वा जो इस संसार में पुष्टि सम्बन्धी प्रथम सेवने योग्य विद्वानों के लिये सत्कार को जनाता हुआ विशेष

पशु बकरा प्राप्त होता है वह सदा रक्षा करने योग्य है (स) आपके यहां नरमेध होता था वा नहीं (गो) नरमेध से आप का क्या तात्पर्य है (स) मनुष्य के वध का (गो) मनुष्य का वध करना हमारे किस ग्रन्थ में आपने लिखा देखा है (स) देखिये नरमेध यज्ञ में मनुष्यों को टुकड़े २ कर हवन करते थे (ग) यह आपने कहां देखा (स) देखो वेद में लिखा है।

प्रजापतये पुरुषान्हिन अलभते वाचे प्लुषीं-श्चचुपेमशकांच्छोचयभृङ्गान् ॥

अर्थात् प्रजापति के लिये पुरुषों का बलिदान करना चाहिये (गो) प्रथम तो आपने मन्त्रही ठीक नहीं लिखा है और फिर आपने अर्थ भी उटपटाङ्गही किया है।

प्रजापतये पुरुषान्हस्तिन आलभते वाचे प्लुषीं श्चक्षुषे मशकांच्छ्रोत्रय भृङ्गान् ॥ य॰ अ॰ २४मं२६

(स) और क्या इसका अर्थ है (गो) इसका अर्थ यह है (प्रजापतये) प्रजा पालनेहारे राजा के लिये (पुरुषान्) पुरुषों (हस्तिन) और हाथियो (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषिनाम के जीवों (चक्षुषे) नेत्र के लिये (मशकान्) मशाओं और (श्रोत्राय) कान के लिये (भृङ्गाः) भौंरों को (आ॰ लभते) प्राप्त होता है वह बली और दुष्ट

पुरुष अर्थात् भगवान् है उसको प्राप्त हों अर्थात् प्राप्त करें, क्योंकि वेही विराट सब जीव मात्र का स्वरूप (व्यापक) अर्थात् मालिक है अर्थात् वोही विराट अन्न रूप हो कर अर्थात् अन्न उपज कर नरों को पालन करता है यह अर्थ है (स) अच्छा इसको देखो।

अथ पुरुषशीर्षमभिजुहोति । आहुति वै यज्ञः पुरुषं तत्पशूनार्ह्मियं करोति तस्मात् व पुरुष एव पशूनां यजते । यद्दैवैनदभिजुहोति । शीर्षहस्तौर्य्यं दधाति ॥

अर्थात्—पुरुष के सिर करके होम करना समर्पित यज्ञही है इस कारण मनुष्य यज्ञ पशुओं में गिना जाता है। (गो) इसका भी यह अर्थ नहीं (स) और क्या (गो) इसका अर्थ यह है कि मनुष्य जो सिर करके अर्थात् पीछे न हट कर अर्थात् प्रेम से कटी बध हो कर जो होम अर्थात् नित्य बलि वैश्व देव करता है वह मनुष्य यज्ञ * पशुओं में अर्थात् बडे यज्ञ करताओं में गिना जाता है।

(स) बडे यज्ञ किस शब्द से आपने लिया है (गो) पशुओं शब्द से क्योंकि पशु एक वचन है जिसके अर्थ यज्ञ के

* पशुओं करके बडे यज्ञ लिये जाते हैं क्योंकि पशु नाम यज्ञ का है।

हैं और "श्रों" शब्द वह बहु बचन है जिसके अर्थ बहुतों के हैं अर्थ बहुत यज्ञों अर्थात् बड़े यज्ञों में गिना जाता है (स) पशु शब्द का अर्थ आपने यज्ञ का कैसे लिये हैं (गो) देखो पशु नाम यज्ञ का लिखा है ।

कतयो यज्ञति पशव श-कां१४प्र ६ अ ६ब्र७कं७

(स) देखो तैतरीय ब्राह्मण में यह लिखा है ।

यजमानः पशुर्यजमानमेव स्वर्गलोकं गमयति ॥

अर्थात्—यजमानही यज्ञ का पशु है वह यजमान को स्वर्ग में ले जाता है (गो) इसका अर्थ यह है यजमान जो यज्ञ करता है उस यजमान को यज्ञ स्वर्ग ले जाता है हां यदि यज्ञ शब्द यहां होता तो आपका अर्थ घटता । परन्तु वह पशुही शब्द है जिसका अर्थ यज्ञ का है (स) अच्छा और देखो ऋग्वेद के १० मण्डल १३२ सुक्त ६ मन्त्र में यह लिखा है ।

ऋतस्य नः यथा न याति विश्वानि दुरिता मंह

अर्थात तू यज्ञ के द्वारा हमारे पाप हरण कर, और देखो ताराड्य महाब्राह्मण में यह लिखा है ।

हे अग्नी प्रक्षिप्यमाण सकलदेवकृतस्यैन सो ऽवयजनमसि । अस्मत्कृतस्यैन सोऽवयजनमसि । यद्दिवा च नक्तं चैनस्कृतस्य अवयजनमसि ।

यत् स्वप्नतश्चजाग्रतश्चै क्रमतस्यावयजनमसि। यद्विद्वांसश्च विद्वांसश्चै नश्चक्रमतस्यवयजनमसि। एन स एन सो ऽवयजनमसि ॥

अर्थ – हे अग्नि मे डाले जाने योग्य ममतित का अह देवताओं मे किये हुये पाप का नाश तूही है। हमारे किये हुये पाप का तूंही नाशक है जो दिन को वा रात को हमने पाप किये हैं उसका नाशक तूही है हमने जो पाप सोते जागते किये हैं उसका नाशक तूही है। पाप से पाप का तू नाशक है। इसके यह शिक्षा मिलती है कि पाप से छुटकारे का उपाय यज्ञ समझा गया है-- और देखो तैत्तरीय ब्राह्मण –

यति मयसमयत पाशात्क्यामर्त्यायहता वैतान् यज्ञस्य मायथामर्नामवयजामहे।

अर्थ – हे मृत्यु मरने वाले मनुष्यों के मत्यानाश के लिये तेरे जो कोटि २ पाप हैं उनको यज्ञद्वारा हम नष्ट करते करते हैं – इन वाक्य से पाप जाता है कि यज्ञ के सामर्थ्य से हिन्दुओं के पाप छूटते हैं (गो) बेशक यज्ञ से पाप छूटते हैं परन्तु आपका इससे क्या तात्पर्य है (गो) वही बली दान (गो) कैसे (स) देखो शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है।

(१) तेभ्यः प्रजापतिरात्मान प्रददौ यज्ञो ह्येषामास ॥

अर्थात् प्रजापति ने अपने को उनके लिये दिया क्योंकि वह आप उनका यज्ञ पुरुष बना देखिये तैतरीय आरण्यक में यों लिखा है।

(२) अबध्नन् पुरुषं पशुं। पुरुषंजातमग्रतत:।

अर्थात—उन्होंने पुरुष को पशु करके बध किया। उस पुरुष को जिसने आदि में जन्म लिया था देखो ऋग्वेद के मण्डल १० सूक्त १२१ मन्त्र २० में यह लिखा है।

(३) आत्मद बलदा यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्यु:।

अर्थात् जो अपने को देता है और बल दाता है जिस का मृत्यु और जिसकी छाया अमृत है—देखिये इन सब वाक्यों से नरमेध सिद्ध होता है (गो) १ प्रथम श्रुति को आपने पूरा नहीं बताया फिर उसका अर्थ भी गोलमाल कर दिया—देखिये वह पूरी श्रुति यह है और उसका अर्थ भी यह है—

अथ देव:। अन्योऽन्यास्मिन्नेव जुह्वतश्चेरुस्तेभ्य: प्रजापतिरात्मानं प्रददौ यज्ञो हैषा मासयज्ञो हिटे वामन्न९—श० का ११ प्र १ ब्र० ८ च० १ रु २—

अर्थ—इसके आठवें ब्राह्मण के आरम्भ में।

"देवाश्च वा असुराश्च"

अर्थात्—देवता और असुरों की उपासना और यज्ञ की विधि बतलाई है प्रथम देवताओं की विधि कही है अर्थात् सदा २ देवता लोग यज्ञ करते हुवे परमेश्वर के ध्यान में अपने आत्मा को मगन करते हैं परन्तु फिर भी यज्ञादि कर्म नहीं छोड़ते क्योंकि यज्ञही, देवताओं का जीवन है। और यज्ञ करने से पर उपकार होता है और पर उपकारी का नाम ही देवता है इसी वास्ते देवता लोग परोपकार का धर्म मानते आये हैं—देखो

"परोपकाराय सतां विभूतय."

अर्थात् परोपकार से बढ़कर और कोई पुण्य नहीं है परन्तु आपने कितना बिगाड़ कर लिखा है और आपने जो (२) नम्बर की श्रुति बताई उसका आधा पद यजुर्वेद के ३१ अध्याय के १५ मंत्र का है और आधापद ३१ अध्याय के ९ मंत्र का है। यह आप धोखा देते हैं देखो प्रथम मंत्र यह है।

सप्तास्यै सन्परिधय स्त्रिसप्त सिमिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्– ३१ अ० मं० १५

अर्थ – हे मनुष्यो तुमलोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मनसे यज्ञको कर उससे पूर्ण ईश्वरको जानके सब प्रयोजनों को सिद्धकरो। १५ और नौमा मंत्र यह है –

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रत:।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये॥ ९॥

अर्थ—विद्वान मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि में सदा हृदय रूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें—। ९।

(३) और भी आपने पूरा मंत्र नहीं लिखा इस से सिद्ध होता है कि आप नरमेध, धोखा से सिद्ध करना चाहते हैं परन्तु कोई बात नहीं सत्यही है—देखो ३ मंत्र आपने जो कहा है यह पूरा मंत्र यह है जिसका अर्थ यह है।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवा:। यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्यु: कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋ०मं० १० सू० १५१ मं० ५

अर्थात् जो जगदीश्वर आत्मविद्या का देनेवाला जिस की उपासना विद्वान करते हैं। जिस के आश्रय से मोक्ष सुख का लाभ होता है। उसी परमेश्वर का हम लोग भजन करें। इस मंत्र में अन्न का अर्थ पुरुषार्थ समझना चाहिये॥

यह नहीं मालूम आप नरबली कैसे सिद्ध करते हैं औ. र जितने आपने प्रमाण दिये हैं सब आधा किसी अन्य का

पद और आधा किसी ग्रन्थ का पद है मानो आप धोखे से गोमेध, नरमेध, सिद्ध करना चाहते हैं (स) इस मंत्र में जो वध शब्द है उस का अर्थ बलिदान करें (गो) बलिदान का नहीं है (स) देखो जब राजा हरिश्चन्द्र शुनःशेफ को खंभे के साथ बांधा था तब शुनः शेफ यह मंत्र पढ़ २ के रोता था —देखो ऋग्वेद ॥

कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम् नामहे, चारु देवस्य नाम । कोनमह्या अदितये पुन दीत्पितरं च दृशेयं मातरं च ऋ०मं० १ अ० ६ सू० २४॥

अर्थात्—मैं किस देवता को मनाऊं अथवा किस प्रजापति की स्तुति करूं कि वह मुझको छुड़ावे जिससे मैं अपने माता पिता को फिर देखूं—('गो) वाह खूब अर्थ किया है (स) और क्या अर्थ है (गो) देखो इस मंत्र का यह अर्थ है—

(कस्य) कैसे गुण कर्म स्वभाव युक्त (कतमस्य) किस बहुतों (अमृतानाम) उत्पत्ति विनाश रहित अनादि मोक्षप्राप्त जीवों और जो जगत के कारण नित्य हैं उनके मध्य में व्यापक अमृत स्वरूप अनादि तथा एक पदार्थ (देवस्य) प्रकाशमान सर्वोत्तम सुखों को देने वाले देव का निश्चय के साथ ('चारु) सुन्दर (नाम) प्रसिद्ध नाम को (मनामहे) जानें कि जो (नूनम्) निश्चय करके (कः)कौन सत्यम स्व

रूप देव (नः) मोक्ष को प्राप्त हुये भी हम लोगों को (मह्यै) बड़ी कारण रूप नाम रहित (अदितये) पृथिवी के बीच में (पुनः) पुनर्जन्म (दात्) देता है जिस से कि-हम लोग (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माता (च) और स्त्री पुत्र बन्धु आदि को (दृशेयम्) देखने की इच्छा करें । भावार्थ--

इस मंत्र में प्रश्न का विषय है कि कौन ऐसा पदार्थ है जो सनातन अर्थात अविनाशी है पदार्थों में भी सनातन अविनाशी है कि जिसका अत्यन्त उत्कर्ष युक्त नाम का स्मरण करें वा जानें और कौन देव हम लोगों के लिये किस २ हेतु से एक जन्म से दूसरे जन्म का संपादन करता और अमृत वा आनंद के कराने वाली मुक्ति को प्राप्त होकर भी फिर हम लोगों को माता पिता से दूसरे जन्म में शरीर को धारण कराता है—

(स) देखिये रामायण बालकाण्ड के ४८ सर्ग से ४८ सर्ग तक में लिखा है कि राजा हरिश्चन्द्र ने १०० गऊ देकर एक ब्राह्मण के बालक को जिसका नाम शुनःशेफ था मोल लेकर उसका बलिदान करना चाहाया परन्तु विश्वामित्र ने उस को बचा लिया था ।

(गो) भाई बाल्मीकी रामायण के बालकाण्ड के ६१ सर्ग में राजा अम्बरीष की कथा कि १०० गऊ देकर शु-

नः शेफ को मोल लियाथा और विश्वामित्रने उसको छुड़-
वा दिया था परन्तु यह कथा रूपकअलंकार है (स) जै-
से (गो) देखो वही शुनः शेफ को राजा हरिश्चन्द्रने १००
गऊ देकर मोल लिया है जो भागवत में लिखा है और
अम्बरीष नेभी १०० गऊ देकर शुनः शेफ को मोल लिया
ऐसा रामायण में लिखा है तो क्या यही २ शुनः शेफ हो
वसीदान के वास्ते मिलता था यह केवल रूपक अलंकार
है।

(अश्वमेध).

(स) देखो अश्वमेध यज्ञ में घोड़ा मारा जाता था (गो)
ऐसा आपने कहां देखा है (स) जिसको कि यज्ञ में भूं-
जते उबालते और फिर उसको खाते थे। ऋग्वेद अष्टक २
अध्याय ३ सूक्त ६ में देखो (गो) इससे तो आप की बातें
सिद्ध नहीं होती देखो वह मंत्र ये है।

मानो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षामरुतः
परिख्यान्। यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेःप्रवक्ष्या-
मोविदथे वीर्याणि। पदार्थ-

(मा) (नः) अस्माकम् (मित्रः) सखा (वरुणः) व-
रः (अर्यम) न्यायाधीशः (आयुः) ज्ञाता (इन्द्रः) ऐश्वर्य
वान (ऋभुक्षा) मेधावी (मरुतः) ऋत्विजः (परि) व-
र्जने (ख्यान) ख्यायेयुः (यत्) यस्य (वाजिनः) वेगवतः

(- देव जातस्य) देवेभ्यो दिव्येभ्यो गुणेभ्य प्रकटस्य (स प्तेः) अश्वस्य (प्रवच्यामः) विदथे । संग्राम (वीर्याणि) पराक्रमानं ॥

. भावार्थ — यह कि मनुष्यों को प्रशंसित बलवान अच्छे सीखे हुये घोडे ग्रहण करना चाहिये । जिससे सर्वत्र विजय और ऐश्वर्यों को प्राप्त हो, यह अर्थ है — नहीं मालूम घोडे को मारना आपने किस शब्द से लिया है (२) अश्‌ड् धातु से कन् प्रत्यय करने से अश्व शब्द की सिद्धि होती है, देखो — श० कां १२ अ० ३ ब्रा० ८ क० ८ 'अश्वो यत् ईश्वरी वा अश्व.' श० कां १३ अ० २ ब्रा ११ क० १४' "प्रजापतिर्वै जमदग्नि. सो ऽश्वमेध."

अश्नुते व्याप्नोति सर्वं जगत् सोऽश्व ईश्वरः ।

अर्थात् उपासना प्रकरण में निराकार ईश्वर का नाम अश्व और उसकी प्रेम भक्ति का नाम अश्वमेध यज्ञ है — अर्थात् व्यापक ईश्वर का नाम अश्व है देखो — श० कां १३ अ० २ ब्रा १३ कं० १ और देखो श० कां १३ अ१ ब्रा६ "राष्ट्रं वाश्वमेधः" राष्ट्रं पालनमेव ॥

- क्षत्रियाणामश्वमेधाख्यो यज्ञो भवति नाश्वं हत्वा तदङ्गानां होमकरणं चेति ।

अर्थात् न्याय से प्रजा पालन का नाम नीति प्रकरण में अश्वमेध यज्ञ है घोड़ा काट कर हवन करने और खाने

का नाम अश्वमेधयज्ञ नहीं है— देखो – श॰ कां १३ अ॰ ६ " अग्निर्वा अश्वः " ॥ इत्यादिक प्रमाणों से शिल्प विद्यारूप यज्ञ प्रकरण में अश्व नाम अग्नि का ऋषि मु-नियों ने कहा है ॥ अग्नि से शिल्प विद्या सिद्ध करने का नाम अश्वमेध है— देखो शं॰कां॰ १३ अ॰ २ ब्रा॰ ३ से । " श्रीर्वैराष्ट्रमश्वमेधः " इत्यादिक प्रमाणों से श्रीमान विद्या और धन वा राष्ट्र नाम पालन का है अर्थात नीति प्रकरण मे विद्या और धन से प्रजा पालन का नाम अश्व-मेध यज्ञ है— देखो निघंटु अ॰ १ खं॰ ३

न वै मनुष्यः स्वर्गलोकं मंजसा वेदाश्वो वै स्वर्गलोकमंजसा वेद ।

अर्थात—सुख लाभ प्रकरण में शुभ कर्मों से ईश्वर ही सुख प्रदाता है और कोई नहीं उसी का नाम अश्वमेध-है—

(स) वेद में तो स्पष्ट घोड़े मारने की आज्ञा है देखो यजुर्वेद के १५ अध्याय और ऋग्वेद अष्टक २ अध्या-३ सू ३ इन दोनों वेदों में १+२+३+४+६+७+८+१०+११+१२+१३+१४+१८+१९+२०+२२ मं-त्रों को देखो यह लिखा है— अर्थात् इस यज्ञ के विषय में जो अश्वदेवों से उत्पन्न हुआ उसके गुण हम प्रगट कर-ते हैं । जब वे सिद्ध किये हुई अग्नि उसके सम्मुख जो म

हो या और संजाया गया लाते हैं, तब उसके अग्रगामी स-
जीला बकरा इन्द्र और पूषा के ग्रहण योग्य पुरोडाश हो-
ता है। यह बकरा जो वे वेगवान घोड़े के संग लिया जा-
ता है सो पूषाका भाग भी है और सब देवताओं के ग्र-
हण योग्यभी हैं और इसलिये लिया जाता है कि त्वष्टा,उ
स को अश्व के संग ग्रहण योग्य प्रहिला पुरोडाश-भोजन
के लिये सिद्ध करे। उस समय में जब याचक अश्व को उ-
पनयन करके अग्नि की प्रदक्षिणा तीन बार करे तब पूषा
का भाग जो बकरा है सो पहले जावे जिस्से वह देवता
ओं को यज्ञ का सन्देश देवे। जो यूप के काटने हारे हों
वा यूप उठाने वाले हों वा उस पर जो पशु बांधते हैं जिं-
सपर अश्व का बांधना होता है उन का परिश्रम हमारी
सब आशा पूर्ण करे। मेरा मनोर्थ पूर्ण होवे कि सुन्दर पी-
ठ वाला अश्व देवताओं की आकांक्षा पूर्ण करे हमने उस-
को देवताओं के पालन के लिये भली भांति से बांध दि-
या है ऋषि लोग आह्लादित होवे। जो मक्खी अश्व का
मांस खावे जो चिकनाई बढ़ती वा शस्त्र अथवा वधिक के
हाथ वा नखों पर लगी वह सब तेरे संग हे अश्व देवता,ओं
का भोजन होवे। जो अनपची घास उसके पेट से गिरपड़े
जो मांस का कच्चा टुकड़ा बच रहे उसे वधिक पवित्र करे
और पवित्र पुरोडाश ऐसा पकावे कि वह भली भांति से

पक जावे। तेरे बध किये हुये शरीर का जो टुकड़ा अ-
ग्नि में भूंजते समय शूल परसे गिरे उसको न भूमि पर न
कुश पर रहनेदे किन्तु उसको चाहित देवताओं को दे जो
अश्व के पकाने के रक्षक हैं और जो सुगंध की प्रशंसा क-
रते और जो अश्वके मांस की भिक्षा मांगते हैं उनका प-
रिश्रम हमारी भलाई के लिये हो। जो दण्डा मांस के उ-
छालने के पात्र में डाला जाता है और वह जिस में से यू-
स बांटा जाता है और पात्रों के ढकने गूलियां और छूरी
ये सब अश्व का यश गाते हैं। धधकता हुआ सुगंधी पात्र
न गिर ने पावे। जो अश्व यज्ञ के लिये चुना गया जिसने
अग्नि की प्रदक्षिणा की है जो भक्तिपूर्वक अर्पण किया
जो मार्जन से पवित्र किया गया उस को देवता गण ग्रह-
ण करते हैं। वेगवान अश्व के चौंतीस पसुलियों में खड्ग
घुस जाता है। देवताओं के प्यारे उसको ऐसी निपुणता
से काटते हैं कि उसके अंग न छेदे जावें और अंग २ कर-
के पिण्डबना कर मैं अग्नि पर समर्पित करताहूं अपने अ-
हु मूल्य देह के लिये तू शोक मतकर क्योंकि तूं देवताओं
के पास निश्चय जाता है तेरो देह में शस्त्र न ठहरे लोभी
और बुद्धिहीन याचक अंगों में ठीक २ न मारके छूरी से
तेरे अंगों का चूर २ कभी न करें। यह अश्व हमारे पास
धनधान्य और बहुतसी गौ और अच्छे घोड़े सुन्दर २ पुत्र-

जावें वेग वान् अश्व हमें दुष्टता से रक्षा प्राप्त करावे यह समर्पित किया हुआ अन्न बलि देवें । इति । देखो यह वे दों में लिखा है (गो) नहीं मालूम आपने यह कसाई अर्थ किस से सुना वा किस पुस्तक में देखा भाई जो वेद मंत्रों के अर्थ आपने बताये है सो उन मंत्रों के यह अर्थ नहो हैं देखो हम आप को उनका अर्थ बताते है –

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येतिपाथः य० अ२५ मं ५१ ॥

अर्थात् जो मनुष्य सुन्दर रूप और धन से युक्त जन को देने वाली हुई वस्तु को आग मे से प्राप्त कराते हैं तथा जो प्राप्त होता हुआ अच्छे प्रकार पूछने वाला संसार जिसका रूप वह जन्म और मरणादि दोषों से रहित अविनाशी जीव बिजुली और पवन सम्बन्धी मनोहर अन्न को सब ओर से पाता है वे मनुष्य और वह जीव सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

(२) एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वात् ॥ अ० २५ मं० २६ ॥

अर्थात् विद्वानों को चाहिये कि जो यह प्रथम सब विद्वानों में उत्तम पुष्टि करने वाले का सेवने योग्य पदार्थों का छिन्न भिन्न करता हुआ प्राणी वेगवान् घोड़ा के साथ प्राप्त किया जाता और जिस से सब ओर से मनोहर पुरोडाश नामक यज्ञभाग को पहुंचाते हुये घोड़े के साथ पदार्थ की सूचना करने वाला उस भाग को उत्तम कीर्तिमान् होने के लिये ही पाकर प्रसन्न होता है वह सदैव पालने योग्य है – (२)

(३) यद्ध विष्य मृतु॒शो दे॑व॒ यानं त्रिर्मानु॑ पाः पय प्रवन्नय॑न्ति । अत्रा पूष्णः प्र॑थमो भा॒गः ए॑ति य॒ज्ञन्दे॒ वेभ्यः प्रतिवे॒द यन्न॒जः । य० २५ मं० ११ ॥

अर्थ – जो मनुष्य ऋतु २ के योग्य होम में चढाने के पदार्थों के लिये हितकारी दिव्य गुण वाले विद्वानों को प्राप्त कराने हारे शीघ्रगामी प्राणी को तीन बार सब ओर पहुंचाते हैं वा जो इस संसार में पुष्टि सम्बन्धी प्रथम सेवने योग्य विद्वानों के लिये सत्कार का जनाता हुआ विशेष पशु बकरा प्राप्त होता है वह सदा रक्षा करने योग्य है।३।

,यु॒प व्रस्का ऽऊनयै यू॒प वा॒हास्यु॒पाल॒ अश्व-यूपायुत च॑तिये चा॒र्वंत॒ पच॑नं सम्भरन्त्यु॒तो तेषा॑मुभिगू॒र्त्तिर्न॒ ऽइन्वतु ॥ २५ ॥ २१ ॥

अर्थात् - जो यज्ञ खंभा को छेदते बनाते और जो यज्ञ स्तम्भ को पहुंचाने वाले घोड़ा के बांधने के लिये खंभा के खंड को काटते छांटते और जो घोड़ा के लिये जिसमें पाक किया जाय उस काम को अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते और जो उत्तम प्रयत्न करते हैं उन का उद्यम सब प्रकार से हम लोगों को व्याप्त और प्राप्त होवे।

उप प्रागात्सु मन्मे धायि मनाद्देवानां माशाऽउपवीत पृष्ठः॥ अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम्॥ २५-३०

अर्थात् - जिसने आपही विद्वानों का जिसका पिछला भाग व्याप्त वह उत्तम व्यवहार धारण किया वा जिससे इन के विज्ञान तथा देश देशान्तरों को प्राप्त हो, वा जिस मत्यच व्यवहार के अनुकूल विद्वानों के बीच पुष्ट बलवान जन के लिये मंत्री का अर्थ जानने वाले पुरुष समीप हो कर आनन्द को प्राप्त होते हैं उन सुन्दर २ आश्रयों वाले जन को हम लोग प्राप्त करें॥

यद्दश्वाय क्रविषो मक्षि पाशं यदा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति। यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु॥ य० अ० २५ मं० ३२। ऋ० मं० १ अ० २२ सू० १६२ मं० १॥

अर्थ — हे विद्वान् मार्ग से पैर रखने वाले घोड़ा के मन को भिन्नभिन्नोंति भजती जाती है या जो भाव धारण किये हिंसन और कष्ट से पिलाता है । यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के द्वारों में जिनमें अवकाश नहीं उन नखों में है वे समस्त पदार्थ तुम्हारे हों । तथा यह सब विद्वानों में भी हो अर्थात् श्रत्यों को घोड़े दुर्गन्धि लेप रहित शुद्ध साखो और डांस से रहित रखने चाहिये अपने हाथ तथा रज्जु आदि से उत्तम नियम कर अपने इच्छानुकूल चाल चलवाना चाहिये ऐसा करने से घोड़े उत्तम काम करते हैं ।

यदूवध्य मुदरस्यापवाति यऽआमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ॥ सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु । य० अ० २५ मं० ३३ । मं १ अ० २२ सू० १६ मं० १० ॥

अर्थ — हे मनुष्यों ! पेट के कोष्ट से मलीन मल निकलता और जो न पचे कच्चे खाये हुये पदार्थ का गन्ध है उसको आराम देने वाले अच्छा सिद्ध करें और पवित्र जिसका सुन्दर पाक बने उसको पकावें, अर्थात् जो लोग यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्ध युक्त पदार्थों को छोड़कर सुगन्धादि युक्त सुन्दरता से बनाया पाक अग्नि में होम करें, वह जगत् का हित चाहने वाले वाले होते हैं । ९५

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलन्निहतस्यावधावति॥ मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ य० अ०५ मं०३४—ऋ० मं अ० २२ सू० १४२ ॥

अर्थ – हे मनुष्य निश्चय से श्रम किये हुये तेरे अन्तःकरण रूप तेज से पकाये जाते अङ्ग से जो शीघ्र बोध का हेतु वचन चारों ओर से निकलता है वह भूमि पर नहीं जाता तथा तृणों पर नहीं जाता किन्तु वह तो सत्पुरुष विद्वानों के लिये दिया होवे। अर्थात् हे मनुष्यों। जो ज्वरादि से पीड़ित अंग हों उनको वैद्यजनों से नीरोग करना चाहिये क्योंकि इन वैद्यजनों से जो औषध दिया जाता है वह रोगी जन के लिये हितकारी होता है।

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ॥ ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु । य अ० २५ मं० ३५ । ऋ० मं १ अ०२२सू० १४२मं१२

अर्थ— जो घोड़ा के मांस मांगने की उपासना करते हैं जो घोड़े को पाया हुआ मारने योग्य कहते हैं उनको निरन्तर, हमसे दूर पहुंचा दो। वेगवान् घोड़े को पका सि·

खा को सब ओर से देखते हैं और उनका अच्छा सुगन्ध युक्त ओर से उत्तम इसको प्राप्त हो। इनके अच्छे काम हमको प्राप्त हों। इस प्रकार दूर पहुंचाओ। अर्थात जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वह राजादि श्रेष्ठ पुरुषों को रोकने चाहिये जिससे मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो।

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया
यापात्राणि यूष्ण आसेचनानि॥
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम्॥

य० अ० २५ मं० ३६। ऋ० मं० १ अ० २ सू० १६२ मं० १३

अर्थ—जो गरमियों में उत्तम ढांपने और सिचानेहारे पात्र वा जो मांस जिसमें पकाया जाय उस बटलोही को निकष्ट देखना वा यानों के लक्षण किये हुये प्रसिद्ध पदार्थ तथा बटनेवाले के घोड़े को सब ओर से सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य है। अर्थात् यदि कोई घोड़ादि उपकारी पशुओं को और उत्तम पक्षियों के मांस खावें उनको यथापराध अवश्य दण्ड देना चाहिये।

निष्क्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः॥

यत्ते पुरीषं यत्ते घासिं जघास सर्वा ताति घपि देविष्वस्तु ।

य० अ२५ मं३८ ऋ० मं० १ ब२२ स० १६२ मं० १४।

अर्थ—हे विद्वान् जो तेरे घोड़े का निकलना बैठना विशेष वर्ताव वर्तना और पछाड़ी पीते खाता सब काम युक्तियों से हों और यह सब उत्तम गुणवालों में भी होवें, अर्थात् हे मनुष्यो आप घोड़े आदि पशुओं को अच्छी शिक्षा तथा खान पान के देने से अपने सब कामों को सिद्ध किया करो ।

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देव बन्धोर्व-
ङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ॥
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत
परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥

य० अ२५मं४१ ऋ० मं१ अ०२२सू१६२मं० १८

अर्थ—हे मनुष्य जैसे घोड़चढ़ा चाबुकी जन जिसके विद्वान बन्धु के समान उस २ वेगवान घोड़े की चौंतिस टेढ़ी बेढ़ी चालों को अच्छे प्रकार प्राप्त होता और छेद भेद रहित अङ्ग और उत्तम ज्ञानों को करता वैसे उसके प्रत्येक मर्म स्थान को अनुकूलता से तुम लोग वृक्ष के समान करो और रोगों को विशेषता से छिन्न भिन्न करो ।

—अर्थात् हे मनुष्यो जैसे घोड़ों को सिखानेवाला चतुर जन घोड़े को चौतिग चित्र विचित्र गतियों को पहुंचाता और वैद्यजन प्राणीयों को नीरोग करता है वैसेही और पशुओं की रक्षा से उन्नति करनी चाहिये।

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ताद्वाय-
न्तारा भवतस्तथा ऋतुः ॥
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि-
तातापिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ ॥

य०अ०२५मं०४२ऋ०मं०१सू०१६२मं०१९॥

अर्थ—हे मनुष्यो जैसे अकेला वसन्त आदि ऋतु शोभायमान घोड़े का विशेष करके रूपादि का भेद करने वाला होता है वा जो दो नियम करनेवाले होते हैं वैसे जिन तुम्हारे अङ्गों वा पिण्डों के ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं करता हूं उन २ को अग्नि में होमता हूं। अर्थात् इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कोई घोड़े के सिखाने वाले ऋतु २ के प्रति घोड़ों को अच्छा सिखलाते हैं। वैसे गुरुजन विद्यार्थियों को क्रिया करना सिखलाते हैं वा जैसे अग्नि में पिण्डों का होम कर पवन को शुद्धि करते हैं। वैसे विद्यारूपी अग्नि में अविद्यारूप भस्मों को होम के आत्माओं की शुद्धि करते हैं।

मात्वात्तपतुप्रिय आत्मा पियन्तं
मास्वधि तिस्तुत्व अतिष्ठपते ॥
मातेंग्रधुरं विशसातिहाय
छिद्रागात्रा एयुसिना मिथूंक: ॥

य॰अ२५मं४३।ऋ॰मं१अ२२सू१६२मं२०

अर्थ—हे विद्वान् आपका जो प्रीत या आनन्द का देने-वाला वह अपना निजरूप आत्मतत्व भी निश्चय से प्राप्त होता हुआ आपको अतीव छोड़ के मत सन्ताप को प्राप्त हो आपके शरीर बीच वज्र मत स्थित करावे आपके छिन्न भिन्न अङ्गों को विशेष न काटे और चाहने वाला जन मत स्थित करे तथा तलवार से परस्पर मत चेष्टा करे अर्थात् सब मनुष्यों को चाहिये कि अपने आत्मा को शोक में न डालें किसी के भी ऊपर वज्र न छोड़ें और किसी का उप-कार किया हुआ नष्ट न करें।

सुगव्यं नोवाजीस्वश्व्यं पुंस:
पुत्रांर॥ऽउत विश्वा पुपरयिम् ।
अनागास्त्वं नोऽअदिति: क्षणो-
तुक्षत्रं नोऽअश्वो वनताएहविष्मान् ॥

य॰अ२५मं ४५।ऋ॰मं॰१अ२२सू१६२मं२२

अर्थ—जो हमारा घोड़ा अन्य घोड़ों में गौओं के लिये प्रसिद्ध काम को करता है वा जो विद्वानों से युक्त पुरु षार्थी पुत्रों और समग्र पुष्टि करनेवाले धन को प्राप्त होता वा जैसे कारण रूप से अनन्तरागी भूमि हमारे लिये अपराध रहित होने को करती है वैसे आप करें वा जैसे प्रशंसित सुख देने जिस में है वह क्षत्रिय गील प्राणी हम लोगों के राज्य को सेवे वैसे आप सेवा किया करो, इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है। अर्थात् जैसे जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान घोड़े के समान अमोघ वीर्य पुरुषार्थ से धन पाये हुये न्याय से राज्य की उन्नति देवें वे सुखी होवें। देखिये आप के सब मन्त्रों का यह अर्थ है इनमें से एक का भी अर्थ घोड़ा मारने का नहीं पाया जाता (म) रामचन्द्रजी ने तो अश्वमेध यज्ञ किया था क्या यह भी सत्य नहीं है (गो) हम पीछे लिख आये हैं कि "राष्ट्रमश्वमेध."—श॰ का १३ अ १ ब्रा ६

राष्ट्रं वाश्वमेधः ॥ राष्ट्र पालनमेव क्षत्रियाणामश्वमेधाख्यो यज्ञो भवतिनाश्वं हत्वा तदङ्गानां होमकरणमिति ॥

अर्थात् न्याय से प्रजापालन का नाम नीति प्रकरण में अश्वमेध यज्ञ है। घोड़ा काट कर हवन करने का नाम

अश्वमेध यज्ञ नहीं है । और वनीव का नाम भी अश्व है देखो श॰कां॰ १३ प्र॰१ अ॰ब्र॰३कं॰१७में लिखा है "वत्रं वा अश्वः" अर्थ—वीरता का नाम अश्व है अर्थात पचिले समय राजा लोग चोर डांकू और अपने से जबर्दस्त राजा देखने के लिये घोड़ा छोड़ देते थे और जो उसको पकड़ता था उस से युद्ध करते थे । वैसेही श्रीमहाराज रामचन्द्रजी ने किया था अर्थात् जब रावण को मारकर राजसिंहासन पर बैठे तो डांकू चोर और अपने से बड़ा बलवान राजा के देखने के वास्ते घोड़े को सजा कर अपने भाई को सेना के साथ कर घोड़े को छोड़ दिया, और कहा कि जो दुखी निर्धन इस घोड़े को पकड़े तो उसका दुःख दूर करना और जो चोर डांकू अथवा राजा इसको पकड़े उस्से युद्ध कर उसको छीनना और चोर डांकुओं को दण्ड देना जिस्से प्रजा निर्भय रहे (म) आपने जो कहा कि यज्ञ में घोड़ा नहीं मारा जाता था हम आप को यज्ञ में गाय मारना दिखाते हैं जिसको आप रक्षा करो २ पुकारते हैं देखो ऋ॰ मण्डल ६ सू॰ १६

यातें अग्नि ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
तेते भवन्तु चक्षणः भासो वशाउत ॥

अर्थात्—हे अग्नि हम तुझको वह पुरोडाश जो हृदय से ऋचा के द्वारा पवित्र किया गया है अर्पण करते हैं । तु-

भको तेरे लिये यनवना मांड़ भौर धेनु होवें (गो) प्रथम तो वैदिक मन्त्रों के अर्थ करने के लिये कोषादिकों के प्रमाण होते हैं दूसरे पद का अर्थ वाच्य और लक्ष भेद से अनेक प्रकार प्रकरणानुसार लिया जाता है। जैसे कि—

काकेभ्यो दधिरक्ष्यताम् ॥

अर्थात्—कौवों से दधि की रक्षा कर। यहां काक पद का वाच्य वायस है परन्तु बिडालादिकों से रक्षा किये बिना दधि की रक्षा कभी नहीं होती इस्से बिडालादिक काक पद के लक्ष्यार्थ हैं। वैसेही अहिंसा पद का वाच्यार्थ जीवरक्षा है सो गो आदिक उपकारी जीवों की रक्षा के बिना अन्य जीवों की रक्षा कभी नहीं होती। इस्से अहिंसा पद का लक्ष्यार्थ गो आदिक उपकारी जीवों की रक्षा समझनी चाहिये। जो गो पद की शक्ति वृत्ति से अर्थ होता है वह वाच्यार्थ है और जो अर्थ लक्षण वृत्ति से हो वह लक्ष्यार्थ है। पद और पदार्थ का वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध शक्ति वृत्ति और पदार्थ का लक्ष्य लक्षण भाव सम्बन्ध लक्षण वृत्ति और पदार्थ का लक्ष्यलक्षण भाव सम्बन्ध लक्षण वृत्ति है। जहां लक्ष्यार्थ भी न बने वहां व्यञ्जन वृत्ति से व्यंग्य अर्थ लिया जाता है जैसे शत्रु गृह में जाते पुरुष को उसका प्यारा कहे कि। "विषभुङ्क्ष्व" अर्थात् विष भोजन

कर यहां शत्रु गृह सें रोकने के लिये विष भोजन का व्यंग अर्थ है। वैसेही गो आदिक उपकारी जीवों की हिंसा से रोकने के लिये सिंहादिकों का शिकार समझना चाहिये वह हिंसा नहीं किन्तु वह न्याय है मांस के खाने के लिये शिकार कहीं नहीं लिखा। जहां पद का व्यंग अर्थ न बने वहां गौणी लक्षण से पद का अर्थ करना चाहिये ॥ जैसे 'सिंहोदेवदत्तः" यहां सिंह पद का अर्थ पशु और देवदत्त पद का वाच्य मनुष्य है सो मनुष्य तो पशु होही नहीं सक्ता किन्तु जैसे सिंह में शूरतादि गुण हैं वैसेही मनुष्य में हैं जैसे अन्न हि गौ. । लिखा है – अन्नमेव परमावो देवाना वीरसमम – इसका यह अर्थ नहीं कि देवताओं का परम अन्न गऊही है क्योंकि यहां अन्न तो गऊ हो नहीं सक्ती किन्तु जैसे अन्न तृप्ति का कारण है वैसेही गऊ के दुग्धादिक पदार्थ तृप्ति के कारण हैं । प्रकरणानुसार शब्द का अर्थ ऋषियों ने माना है जैसे कि पुष्पवन्त पद के सूर्य और चन्द्रमा दोनों अर्थ हैं परन्तु उष्णता प्रकरण में सूर्य और शीतलता प्रकरण में चन्द्रमा अर्थ लिया जाता है। वैसेही गौ शब्द के भूमि और पशु आदिक अर्थ हैं । यज्ञ प्रकरण में गौ का अर्थ भूमि अर्थात् शुद्ध भूमि पर हवन करने का नाम गोमेध यज्ञ प्राचीन आर्यों ने माना है । निघण्टु कोष अ० १ खं० १ । "गौरित्येनाम" अर्थात् गौ

नाम भूमि का है। दुग्धादि प्रकरण में गौ का अर्थ गऊ है॥ आकांक्षा योग्यता आसत्ति और तात्पर्य भी शब्दबोध के हेतु महाभाष्य में लिखे हैं। जैसे द्वारं यहां द्वारपद को पिधेहि पद की आकांक्षा है अर्थात् द्वार बन्द करो॥ यहां सेनादिक प्रकरण समझना चाहिये वैसेही विद्वानों की प्रशंसा प्रकरण में गौ पद का मधुरवाणी अर्थ भी है अर्थात् मधुरवाणी से विद्वानों की प्रशंसा गोमेध यज्ञ है निघंटुकोष अ०१ खं० ११॥ "गौरिति नाम" ॥ अर्थात् गौ नाम वाणी का है। "जलेनसिंचति" ॥ अर्थात् जल से सिंचन करता है। यहां जल और सिंचन की योग्यता है॥ वैसेही उणादिकोष पा० २ सू० ६॥ उसके भाष्य में लिखा है॥ गच्छति यो यत्र यया वा सा गौः" निघंटु० अ० ३ खं० १५॥ "मेधः मेधाविनाम" यहां गौ नाम पशु का और मेधः नाम विद्वान का है। अर्थात् धन उपार्जन प्रकरण में विद्वान को योग्य है कि धन एकत्र करने के लिये गौ आदिक उपकारी पशुओं की रक्षा करें उसीका नाम गोमेध यज्ञ है॥

पद की शक्ति या लक्षणावृत्ति का नाम वृत्तिप्रभाकर के तीसरे प्रकाश में आसत्ति लिखा है॥ अर्थात् प्रकरणानुसार अर्थ का निश्चय कर दिया है। जैसे "घटमानय" पिपासा प्रकरण में कलश को लाना योग्य है वैसेही निघंटु० अ०३ खं० १ १६। "गौस्तोत्रनाम" ॥ अर्थात् पाठ समय

गौ पद का अर्थ सोम माना है। वक्ता की इच्छा का नाम तात्पर्य है यद्यपि शुक्र वाक्य में वक्ता का तात्पर्य नहीं भी तथापि शुक के अध्यापक की इच्छा का वहां भी संभव है जैसे ही "स्वर्गकामो यजेत" अर्थात् सुख की इच्छावान् पुरुष यत्न करे। यद्यपि यहां गौ का प्रकरण नहीं भी है तथापि बिना घृत को यज्ञ नहीं होता इसलिये घृत की वृद्धि के लिये यज्ञ प्रकरण में गौ की रक्षा संभव है इससे अथर्ववेद में लिखा है कि "गावो घृतस्य मातरो" अर्थात् घृत की माता गौ है क्योंकि बिना गौ के घृत से यज्ञ होही नहीं सक्ता। इसी पुस्तक के २४ पृष्ठ में हम लिख चुके हैं। अब हम आपको उस मंत्र का अर्थ दिखाते हैं जो आपने गऊ सांड मारने का दिया है, देखो—

आते अग्नऋचाहविर्हृदा तष्टभरामसि।
ते ते भवन्तु उक्षण ऋषभासो वशाउत॥

ऋ० मं० ६ सू० १६ मं० ४१।

अर्थ—तुम सर्व ओर श्रुति से शुद्ध अन्तःकरण द्वारा अच्छे प्रकार उत्तम श्रेष्ठ पदार्थों की कामना करो। अर्थात् सत्य भावना युक्त अन्तःकरण से सर्वथा ईश्वर की आज्ञा पालन कर श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्त हो यह अर्थ है, गौ सांड मारने का नहीं है (स) ऋषभ शब्द का अर्थ आपने क्या किया है? (गो) सांड का (स) कैसे? (गो) देखो

"ऋषिवृषिभ्यां कित् ऋषति गच्छतीति ऋषभः वर्षतीति वृषभः" उणादि कोष॰ पा॰ ३ सू॰ १२३।

अर्थात् कर्मकाण्ड प्रकरण में ऋषभ शब्द का अर्थ बैल का है और इसी प्रकार धर्म में ऋषभ वृषभ शब्द का अर्थ धर्म का है. सो यह मंत्र कर्मकाण्ड का है इसलिये ऋषभ शब्द का अर्थ यहां बैल का ही है अर्थात् सांड का नहीं

(ख) अथवा यजुर्वेद के ५८ मंत्र को देखो —

ईशानाय परस्वतआलभे मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयांस्त्वष्ट्र उष्ट्रान्।

अर्थात् — बृहस्पति को गौ चढ़ाना (गौ) प्रथम तो मंत्र को अशुद्ध लिखा है फिर अर्थ भी मनमाना किया है देखो शुद्ध मंत्र यह है। य॰ अ॰ २४ मं॰ २८।

ईशानाय त्वपरस्वतआलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयांस्त्वष्ट्र उष्ट्रान्।

इस मंत्र का अर्थ यह है कि बृहस्पति और वरुणादि देवताओं के नाम से गौ भैंसादि दान दे, यह लिखा है मारना नहीं, जैसे हम इसी पुस्तक के ४० वें पत्र में दान देना लिख आये हैं —

य एवं गामलं कृत्वा दद्यात् सूर्याय मानवः।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ॥

अर्थ -जो विधिपूर्वक गौ को भूषित कर सूर्य के अर्थ देते हैं वे अश्वमेध से बड़ा पुण्य फल पाते हैं । जैसे इस श्लोक में सूर्य के अर्थ अर्थात् सूर्य के नाम से गौ दान की जाती है वैसेही उस मंत्र का तात्पर्य है मारने का नहीं।

(स) अच्छा तैत्तरीय ब्राह्मण के दूसरे काण्ड के आठवें प्रपाठक को देखो-

वैष्णवं वामनमालभेत, इन्द्राय मन्युमते मनस्वते ललामं प्राशृंगमालभेत । वैष्णवारुणी वशामालभेत ॥ द्यावा पृथिव्या धेनुमालभेत । औषधीभ्यो वहतमालभेत ॥ पौष्णां श्याममालभेत मैत्रावरुणीविरूपामालभेत । रौद्रीं रोहिणीमालभेत सौरीं श्वेतां वशामालभेत ॥

अर्थात् विष्णु के लिये बौना बैल वध करना इन्द्र के लिये क्रोधवान और अभिमानी है एक टिकुला और मैंना बैल, विष्णु और वरुण के लिये, बंध्या गौ द्यावा पृथ्वी के लिये धेनु औषधियों के लिये बधिया बैल पूषा के लिये काला बैल मैत्रा वरुण के लिये दो रंगी गौ रुद्र के लिये चितकबरी गौ सूर्य के लिये श्वेत बंध्या गौवध करना ।

(गो) बड़े शोक की बात है कि जब वेदों में जीव हिंसा करना मना लिखा है फिर उनके ब्राह्मण ग्रंथों में कैसे हो

सकता है इस बात को आप नहीं विचारते हैं और न शब्दों के अर्थ को देखते हैं, भाई मनमाना अर्थ भी करिये कुछ प्रकरण को भी देख लिया करिये कि यह कौन प्रकरण है अथवा आपने वध कर्म किस शब्द से लिया है (अ) आलभेत शब्द से (गो) इस शब्द का अर्थ प्राप्ति का है (अ) प्राप्ति का तब होता यदि खाली अलभत होता (गो) अरे भैया "डुलभष्प्राप्तौ" धातु से आलभेत है, आङ् उपसर्ग से "आलभ" शब्द की सिद्धि होती है, आङ्, अर्थो, पदार्थ क्रियायोग मर्य्यादाभिविधिषु। उदाहरणम्।

आवर्षिधिभ्याकाशाद्वायुः (ईषदर्थे) आपिङ्गलः (क्रियायोगे) आगतोऽक्षति (मर्य्यादायाम्) आमुद्राद्राजदण्डः (अभिविधौ) आकुमारं यशः पाणिनेः॥

अर्थात आलभ शब्द का अर्थ प्राप्तिका है अर्थात विष्णु आदि देवताओं को अमुक २ गाय बैल प्राप्त हों अर्थात उनके नाम से दान करो, क्योंकि देवताओं के नाम से गो दान करना बड़ा पुण्य लिखा है जैसे यह श्लोक है—

दशगावः सब्रषभावृषभैकादशः स्मृताः।
सूर्यायत्र विनिर्दिश्य यावलीभ फलं लभते श्रुणु॥

अर्थात —दस गौ और एक ब्रषभ "ब्रषभैकादशी" क

होती हैं इस पूर्वोक्त विधि से जो सूर्य को अर्घ देते हैं उसको बड़ा फल होता है इसी पुस्तक के ४१ पन्ने में लिखा है।

बस यही तात्पर्य इसमें है मारने का नहीं है यदि मारने का होता तो रोजही लाखों गौ बैलादि देवताओं पर मारकर चढ़ाते, परन्तु यह अर्थही नहीं केवल इनके नाम से दान करने का है अच्छा और देखो—

"गामालभ्य कर्मीच्या वा"।

अर्थात् यदि ब्राह्मण थोड़ा सा भी अपवित्र हो जाय तो सूर्य के दर्शन और गौ को स्पर्श कर ले शुद्ध हो जायगा देखो यदि मारने का होता तो नित्यही लाखों गौ मारी जातीं, जैसे आप "आङ् उपसर्ग पूर्वक" "डुलभष्" धातु को हिंसार्थकही लेते हैं, यदि केवल हिंसार्थकही होता तो इस वाक्य में स्पर्शार्थक न होता। हां प्रकरणानुसार वृद्लता भी है परन्तु तौभी हम दृढ़ता के साथ कहते हैं कि यह धातु आङ् के साथ प्रायः प्राप्त और स्पर्शार्थकही है।

(प्र) राजसूय और वाजपेय अश्वमेध यज्ञों में तो गौ सदा मारी जाती थीं देखो तैत्तरीय ब्राह्मण में लिखा है—

तस्मादेतद्रगिनो वीहितो धूम्ररोहित इत्यादिभिरनुवाकैरुक्ताः प्रत्यनुवाकमष्टादशसंख्या मिलित्वाचशत्यधिकशतसंख्यकाः पशवः आलभ्यः॥

इससे बोध होता है कि अश्वमेध में १८० पशु गाय घोड़ा इत्यादि मारे जाते थे (जो) कोई संवी का हेरफेर करते हैं तैत्तरीय ब्राह्मण में तो यह वाक्य लिखा है—

प्रजापतिरश्वमेधमसृजत, सोऽस्मात्सृष्टोऽपाक्रामत्। तमष्टादशिभिरनुप्रायुङ्क्त तमाप्नोत्तमा-प्त्वाऽष्टादशिभिरवारुन्ध॥ यदष्टादशिन आलभ्यन्ते यज्ञमेव तैराप्त्वा यजमानोऽवरुन्धे। संवत्सरस्य वा एषा प्रतिमा, यदष्टादशिनः द्वादशमासाः पञ्चर्तवः॥ तै० ब्रा० ३ अ० ९ प्र० ८

पुरुषो वाव संवत्सरः मो० ५४० प्र० ५ वा ३

अर्थात्—प्रजापति ने अश्वमेध को उत्पन्न किया वह इससे उत्पन्न हुआ वह हट गया उसको अष्ट वसुओं से फिर लौटाया। यह जो अष्टा वसुयां मिलते हैं इनके द्वारा यज्ञ प्राप्त होकर यजमान अवरोध होता है यही संवत्सर की प्रतिमा है। जो यह अष्टा दशयां हैं यह १२ महीने और ६ ऋतु ईश्वर ने प्रजापालन के लिये बनाये हैं वह ईश्वर से रचित होकर जगत में प्रविष्ट हो रहे हैं इसलिये उस यज्ञ को करना जो १८ भाग अर्थात १२ महीने ६ ऋतु में मनुष्यों का धर्म है। कि इसका प्रयोग करें जो ऐसा करते हैं वह इस यज्ञ को प्राप्त होते हैं और वर्ष भर में रक्षा

करता है। और यह समय जो बीत रहा है, इसी समय को द्वारा यज्ञ को प्राप्त होकर यजमान की रक्षा करता है— इसका तात्पर्य यह है कि १२ महीने ६ ऋतु में जो यज्ञ करता है वह आनन्द को प्राप्त होता है और आपके उस गड़बड़ मंत्र का यही तात्पर्य है कि जो १२ महीने ६ ऋतुओं का यज्ञ करता है उसको १०० यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

(स) इसमें तो पशवः शब्द आया है उसका आप क्या अर्थ करते हैं (गो) पशवः का अर्थ त्वाष्टा अर्थात् वसुओं का अर्थात् १२ महीने ६ ऋतुओं का है (स) कैसे? (गो) देखो लिखा है—

त्वष्टा वै पशूनामीष्टे पश्वो वसु ।

शं० का ३ प्र०५ अं०७ ब्रा०६ कं० १०

अर्थात्—त्वष्टाही नाम पशु का है और वही त्वष्टा वसु है। (स) अच्छा तैत्तिरीय ब्राह्मण के इस वाक्य को देखो—

दैव्याः शमितारउतमनुष्याः आरभध्वं उपनयतमेध्यादुरः आशासाना मेधपतिभ्यां मेधं। प्रास्माअग्निंभरत स्तृणीतबर्हिः, अन्वेनं माता मन्यतां, अनुपिता, अनुभ्राता सगर्भ्यः, अनुसखा सूयथ्यः। उदीचीनं अस्य पदोनिधत्तात्, सूर्यं

चक्षुर्गमयतात् ॥ वातंप्राणमन्ववसृजतात् दिशः श्रोत्रं । अन्तरिक्षमसुं, पृथिवींशरीरं, एकधास्य त्वचमाच्छ्यतात् ॥ श्येनमस्य वक्षः कृणुतात् प्रशसाबाहू शलादोषणी कश्यपेवांसा अच्छिद्रे श्रोणी । कवषोरू स्रेकपर्णाष्ठीवन्ता, षड्विंशतिरस्य वंक्रयः । अनुष्ठ्योच्च्यावयतात्, गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतात् । उवध्यगोहं पार्थिवं खनतात्, अस्नारक्षः संसृजतात् वनिष्टुमस्य माराविष्टउरूकं मन्यमानाः ॥ नेद्वस्तोके तनये, रविता रवच्छमितारः, अध्रिगो शमीध्वं । सुशमिशमीध्वं शमिध्वमध्रिगा इति ॥

अर्थात् हे शमन कर्त्ता देवता और मनुष्यो अपना कार्य आरम्भ करो काट डालने के निमित्त समर्पित करो यजमान के लिये काटने के आकाङ्क्षित होकर अग्नि उस पशु के निमित्त लाओ। कुशा बिछा दो इसके माता, पिता सहोदर भाई, और सखाओं की अनुमति लेओ । उत्तर दिशा को उसको पांव करो आंखें सूर्य की ओर प्राण वायु की ओर कान दिशाओं की ओर उसका जीव आकाश में पहुंचे उसका शरीर भूमि पर रहे इत्यादि ।

(गो) इसका अर्थ यह नहीं है (स) और क्या है (गो) इसका अर्थ यह है कि मन को वश में रखनेवाले मनुष्यों देव सम्बन्धी अपने कार्य्य को आरम्भ करो, यजमान के पवित्र करने के निमित्त आकांचित होकर अग्नि यज्ञ के लिये लाओ और कुशा बिछाओ और यज्ञकर्त्ता के माता पिता भाई और सखाओं की अनुमति लेकर यज्ञ आरम्भ करो, यज्ञ देवता की मूर्ति के पांवों उत्तर दिशा में करो, आंखें सूर्य को प्राण वायु की ओर कान दिशाओं की ओर जीव आकाश में पहुंचे और शरीर भूमि पर रहे – अर्थात् यज्ञ मूर्ति के जो २६ अंग हैं इन अंगों की रक्षार्थ इन इन देवताओं के नाम से २६ आहुति दो कि जिससे यह २ देवता इस यज्ञ मूर्ति की रक्षा करें देखो यदि कहीं यज्ञ मूर्ति का अंगभंग हो जावे तो प्रायश्चित करना लिखा है।

यज्ञ धर्मो विद्धोस्ति तेषु प्रायश्चित्तिः ॥

जिस यज्ञ में मूर्ति का अंगभंग हो जावे तो उसका प्रायश्चित करो इसका प्रायश्चित ऐसे करने को लिखा है।

स्वाहा प्राणेभ्यः साधि पतिकेभ्यः पृथिव्यै स्वाहा अग्नये स्वाहा अन्तरिक्षाय स्वाहा वाय

वै स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा॥

य० अ० ३९ मं०-१–२।

अर्थात् - भूमि, चन्द्रमा, दिशा, नक्षत्र, जल, वरुण, नाभि और पूत के लिये स्वाहा अर्थात् इनके नाम से आहुतियां दें इनके नाम से आहुतियां देने का कारण यह है कि यह देवता शरीर के जितने अंग हैं उनके यह रक्षक हैं इसलिये इनको अंगों में स्थापन करके आहुति देना लिखा टुकड़े अंगों के करके देवताओं को नहीं दिये जाते हैं देखो — श० १४। ९। ३। १०।

मुखे मेवास्मिन्नेतद्दधातीति ब्राह्मणं।

तस्य मंत्रः वाचे स्वाहा यजु० अ० ३९ मं० ३।

नासिके एवास्मिन्नेतद्दधातीति ब्राह्मणं श० १०

तस्य मंत्रो प्राणाय स्वाहा ३ प्राणाय स्वाहा ३

चक्षुषी एवास्मिन्नेतद्दधातीति ब्राह्मणं १०

तस्य मंत्रो चक्षुषे स्वाहा ३ चक्षुषे स्वाहा ३

कर्णा वास्मिन्नेतद्दधातीति ब्राह्मणं श० १०

तस्य मंत्रो श्रोत्राय स्वाहा ३ श्रोत्राय स्वाहा॥३।

अर्थ – मूर्ति में मुख को धारण करता है यह ब्राह्मण

मूर्ति बनाते हैं, यदि मूर्ति काष्ट की हो तो अग्नि में जल जाय, स्वर्ण की हो तो पिघल जाय, पाषाण की हो तो फट जाय, लोहे की हो तो परोसासी को भस्म कर दे। इस कारण मृण्मय मूर्तिही बनाते हैं क्योंकि उसका अग्नि में रखना एक यज्ञ विधि है, इसलिये मृण्मयं मूर्ति बना कर होम करना लिखा है। अब हम यह भी बताते हैं कि जिस मिट्टी से यज्ञ मूर्ति बनाई जाती थी देखो—

एतावाऽएतद्कुर्वत यथा यथैतदाज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यततस्मान्मूर्तिनिर्म्माणायैतां वल्मीकवपां परिगृह्णाति ताभिरेवै वमेतद्रसेन समर्धयति कृत्स्नं करोतीति ब्राह्मणं श० ।१४।१।२।१०।

अर्थात् माया से वैष्णवी तेज गिरने से कारण वल्मीक वपा (बमई की मिट्टी) हुई इस कारण उसको लेता है और उससे महावीर (यज्ञ) मूर्ति को समृद्ध और परिपूर्ण करता है यह वाक्य ब्राह्मण का है—

अथातः सवनीयस्य पशोर्विभागं व्याख्यास्यामः। उद्धृत्यावदानानि हनुसजिह्वे प्रस्तोतुः कण्ठः सकाकुदः प्रतिहर्त्तुः श्येनं वक्ष उद्गातुः दक्षिणपार्श्वं सांसमध्वर्य्योः सव्यमुपगातृणां सव्योऽसः प्रतिप्र-

इसका अर्थ भी यह नहीं है (स) इसका ठीक अर्थ क्या है ? (गो) इसका अर्थ यह है कि यज्ञ करता लोग यज्ञ वेदी में इस २ प्रकार बैठें अर्थात् यज्ञ के दक्षिण पार्श्व में उद्गाता बैठे और वाम पार्श्व में उपगाता बैठे और वाम स्कन्ध में प्रस्ताता और दक्षिण श्रोणी में ब्रह्मा और पिछले सकथि में ब्रह्मवेशी और उरु में पान करता और वाम श्रोणी में होता और दूसरे सकथ में मैत्रा वरुण और दूसरे उरु में अच्छावाक और दक्षिण भुजा में नेष्टा और वाम भुजा में सदस्य और हृदय अर्थात् बीच में यजमान बैठे — देखो

यजमान

उद्गाता | उपगाता

ब्रह्मा | अग्नि कुण्ड | प्रस्ताता

नेष्टा | होता

सदस्य

पान कर्ता | मैत्रावरुण

पूर्व

(म) क्यों जी, उस वाक्य में तो यज्ञ पशु के भाग की व्याख्या है आप ने यज्ञ के भोग की व्याख्या कैसे की है, क्यों उसमें तो सवनी की यज्ञ तिसके पशु की व्याख्या करते हैं ऐसा लिखा है फिर इनू शब्द भी है (गो) आप सवनी का अर्थ यज्ञ का लेते हैं (स) जी हां (गो) भाई सवनी शब्द का अर्थ यहां चन्द्रमा सोम का है और पशु नाम यहां यज्ञ का है अर्थात सोमयज्ञ की व्याख्या है पशु मारने की नहीं और इनू शब्द का अर्थ यहां कपोल का है (स) आपने सवनी शब्द का अर्थ सोम चन्द्रमा का कैसे लिया है (गो) देखो—"सुपुसूजोयुच" भाष्यम् ॥ सवत्युत्पादयति सुनोति निष्पारयति इत्यात् वास सवनः चन्द्रमा वा। सवना शब्दच्छप्रत्ययः तस्य आयनेमीयो य फ ठ ख छ घ प्रत्ययादीनामित्यनेन ई या देशे ख़ते सवनी येति रूपं निष्पन्नं सवनस्य भावः सवनीयः अर्थात सोम यज्ञ। देखा सिद्ध हुआ या नहीं। (स) अच्छा पशु शब्द का अर्थ यज्ञ का कैसे लिया है सो कहिये (गो) देखो—

अग्निःपशुरासीत: शं०कां १३प्र१ अ २ ब्रा०कां १६

अर्थात अग्नि नाम पशु का है और पशु नाम अग्नि का है और देखो—

कतमो यज्ञ इति पशुन० शं० कां १४प्र६अ६ब्रा०का७

अर्थात यज्ञ नाम पशु का है और पशु नाम यज्ञ का है

(ग्रो) देखो उणादि कोष, पा० १ सू० १० । हन् धातु के नित् को ड का आदेश होकर हनू शब्द सिद्ध होता है अर्थात् हन्यतेऽनेनेति हनुः कपोलावयवः भोक्ष्ये च्युर्वा । प्रकरणानुसार यहां हनु का अर्थ कपोल अवयव चिबुका लिया जाता है हिंसा का नहीं देखो तीनों शब्द सिद्ध हो गये हैं वा नहीं. अच्छा अब हम आपको अथर्ववेदही से जीव मारने का निषेध दिखाते हैं देखो—

अनागाहत्या वै भीमा कृत्ये मानो गामश्वंपुरुषं वधीः । यत्र यत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसीभव । अथर्ववेद कां० १० प्र० अनु०

अर्थ—सर्वापराधहीन गौ की हत्या परमही भीषण भयंकर है वह नहीं करना केवल यही क्यों मनुष्य, गौ, अश्व इन सबको नहीं मारना ।

अब देखिये जब अथर्ववेद में गाय घोड़ा नर मारनेही मना लिखा है फिर टुकडे २ करने की आज्ञा कैसे हो सकती है क्योंकि टुकडे तभी होंगे जब वध किया जायगा सो वध करना पाप लिखा है । (स०) अर्थ वध करना पाप है परन्तु यज्ञ में वध करना पाप नहीं कहाता क्योंकि लिखा है कि—

सौत्रामण्यां सुरां पिबेत् । प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति ॥

अर्थात् – सौत्रामणि यज्ञ में मद्य पीना और यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं है क्योंकि यज्ञ में जो जीव मारा जाता है उसकी हिंसा नहीं होती क्योंकि वह जीव तत्कालही स्वर्ग को चला जाता है (गो) प्रथम तो इस वाक्य का प्रमाणही नहीं दिया कि यह अमुक वेद पुराण स्मृति का वाक्य है दूसरा आप कहते हैं कि यज्ञ में मद्यपान करने मेंही दोष नहीं परन्तु मनुजी महाराज मद्य के स्पर्शही को मना करते हैं।

स्पृष्ट्वा दत्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥

अर्थ – मद्य का स्पर्श करे वा दान दे अथवा विधिपूर्वक दान ले शूद्र का उच्छिष्ट (जूठा) जल पीवे तो कुशा औटाय के तीन दिन पीने से शुद्ध होता है और देखो –

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥

अर्थात अज्ञान से (बिन जाने) मद्य पान करे तो पुनः संस्कार करने से शुद्ध होता है और ज्ञान से करे तो (पूर्वोक्त तप्त मद्य दग्धादि से) शरीर त्याग करने से शुद्ध होता है, कहिये अब कैसे कहते हैं कि दोष नहीं है। दूसरे मांस खाने में दोष नहीं इसके बारेमेंभी देखिये दोषहै वा नहीं

ना क्रत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित
न च प्राणिवधःस्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥

अर्थात बिना जीव मारे मांस कभी नहीं प्राप्त होता और जीव को मारना स्वर्गदायक नहीं किन्तु नर्कदायक है अतएव मांस भक्षण न करना चाहिये। और देखो—

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥

अर्थात मांस की उत्पत्ति तथा जीवों के वध बन्धनादि रूप क्लेश को देख मांस मात्र के भक्षण का त्याग करे।

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन योजयेत शतं समाः।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यं फलं समम्॥

अर्थात जो मनुष्य वर्ष २ में अश्वमेध यज्ञ शत (१००) वर्ष तक करे और जो मांस भक्षण न करे इन दोनों को पुण्य का समान फल है।

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः।
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांस परिवर्जनात् ॥

अर्थात कन्दमूल फल फूल मुनि अन्नों के भोजन से जो फल नहीं प्राप्त होता जो मांस के न खानेवाले को होता है।

मांसभक्षयिता मुत्रयस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥मनु॥

अर्थ यहां जिसका मांस मैं खाता हूँ वह उस जन्म में मेरा मांस खायगा यह मांस शब्द का अर्थ विद्वान पुरुष करते हैं—एक दिन महाराज युधिष्ठिरजी ने भीष्मपितामहजी से भक्ष्य अभक्ष्य के बारे में जो पूछा और जो भीष्मजी ने उत्तर दिया सो देखाता हूँ युधिष्ठिरउवाच—

दोषो भक्षयतः कः स्यात् कश्चाभक्षयतो गुणः ।

अर्थ - हे महाराज किस वस्तु के खाने में दोष होता है और किसके खाने से गुण होता है सो कहिये, तब भीष्मजी ने उत्तर दिया—

ऋषिनामत्र सम्वादो बहुशः कुरुनन्दन ।
बभूव तेषान्तु मतं यत्छृणु युधिष्ठर ।
सप्तर्षयो वालखिल्यास्तथैव च मरीचयः ।
अमांस भक्षणं राजन् प्रशंसन्ति मनीषिणः॥भा०॥

अर्थ हे युधिष्ठिर भक्ष्य अभक्ष्य के विचार के लिये सात महर्षि और बालखिल्य ऋषि और मरीची आदि सब ऋषियों ने बड़ा सम्वाद करके यह निश्चय किया कि मांस कदापि न खाना चाहिये।

न भक्षयति यो मांसं न च हन्यान्नघातयेत् ।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायं-भुवोऽब्रवीत् ॥

अर्थ। स्वयंभु मुनि कहते हैं कि जो पुरुष मांस नहीं

खाता और जीव को नहीं मारता वह सर्व प्राणियों का मित्र है।

अधृष्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।
साधूनां संमतो नित्यं भवेन्मांसं विवर्जयेत् ॥

अर्थ जो प्राण मात्र को नहीं दीख पड़ता सर्व जीव को विश्वास करने योग्य और नित्य साधु का मानने योग्य वह प्राणी मांस त्यागने से होता है।

स्व मांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति ।
नारदः प्राह धर्मात्मा नियतां सोऽवसीदति ॥

अर्थ—नारदजी कहते हैं कि जो नर पराये के मांस से अपने मांस बढ़ाने की इच्छा करता है सो नर चाहे धर्मात्मा भी हो वह रात दिन दुःख को प्राप्त रहता है।

ददाति यजते चापि तपस्वी च भवत्यपि ।
मधुमांसनिवृत्येति प्राहचैव बृहस्पतिः ॥

अर्थ—बृहस्पतिजी कहते हैं कि जो नर दानदाता यज्ञ भी करता है तप भी करता है उसको मद्य मांस से निवृत्त रहना चाहिये।

दृष्टन्तु खलु कौन्तेय श्रुतमासीत्पुरामया ।
मार्कण्डेयस्य वदतो ये दोषामांसभक्षणे ॥

यो वै खादति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम्
हतानां वा मृतानां वा यथा हन्ता तथैव सः ॥

अर्थ – हे युधिष्ठिर मैंने मारकण्डेजी के मुख से सुना है कि जो नर अपने जीवन की इच्छा करके प्राणियों का मांस खाते हैं चाहे मृत्यु जीवों का मांस हो चाहे वध किये हुये का मांस हो उसके खानेवालेको कसाई के तुल्य जानो।

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत्।
मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः॥
रूपमव्यंगतामायुर्बुद्धिं सत्वं बलं स्मृतिम्।
प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः॥

अर्थ– जो नर मांस नहीं खाते वह परम ऋषि हैं वह बड़े यशधारी हैं वह धन्य हैं उनकी आयु बढ़ती है उनको स्वर्ग प्राप्त होता है।

मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
न खादति च यो मांसं सममेतन्मतं मम॥
सदा यजति सत्रेण सदा दानं प्रयच्छति।
सदा तपस्वी भवति मधुमांसविवर्जनात्॥

अर्थ जो नर मांस नहीं खाते और जो नर सौ वर्ष तक मास २ में अश्वमेध यज्ञ करते हैं वह दोनों बराबर हैं और जो सत् उपदेश से मद्य मांस त्याग करते हैं वह सदा तपस्वी और सर्व यज्ञ और सर्व दान का आदि जो करते हैं उनके पुण्य को मांस त्यागी फल पाता है।

सर्वे वेदान तत् कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ॥
यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि विवर्तते ॥

अर्थ—यदि कोई अज्ञानें वश मांस खाता होय और यदि वह सत् उपदेश द्वारा छोड़ दे तो उसको ४ वेद पढ़ने का और सम्पूर्ण यज्ञ करने के फल से अधिक फल मिलता है।

कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ।

अर्थ—वेद शास्त्री को जाननेवालों की मृत्यु कैसे होय हे प्रभु सो कहिये तब भीष्मजी ने कहा कि—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान्जिघांसति ॥

अर्थ—और नीच का अन्न खाने से और आचार भ्रष्ट होने से और आलस से इन दोषों से ब्राह्मणों की मृत्यु होती है।

न भक्षयति यो मांसं न च हन्यान्न घातयेत् ।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥

अर्थ—यदि मांस न खायें और प्राणियों का घात न करें परन्तु सर्व भूतों पर दया करे तो कभी मृत्यु न हो ऐसा स्वयम्भु मुनि कहते हैं।

अधार्मिको नरो योहि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥

अर्थ – जो मनुष्य अधर्मी हैं और जिसको पापी धन मिलता है और हिंसा करने में नित्य तत्पर रहता है वह इस लोक में सुख को प्राप्त नहीं होता है।

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रकृते मतिः।
यथा यथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा॥

अर्थ – जो मनुष्यों को और पशुओं को दुःख देने से जैसे २ दुःख बढ़ता है वैसेही वह भी दण्ड को पाता है।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयस्करं परम्॥

अर्थ – वेद पढ़ना, तप करना, ज्ञानइन्द्रियों को दमन करना, हिंसा न करना, गुरुजनों की सेवा करना, यही उत्तम कल्याण के मार्ग हैं।

वर्जयेन्मधु मांसञ्च गन्धं माल्यं रसां स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥

अर्थ – प्राणियों को मद्य मांस गन्ध माला रस स्त्री (शुक्ता) सर्वजीवों की हिंसा का छोड़ना यह परम धर्म है।

इन्द्रियासक्तदुर्दान्ताः क्रूराचाराः रसं वसन्।
अहिंसा दमदानाभ्यां जयेत् स्वर्गं तथा व्रतः॥

अर्थ – अहिंसा जैसे स्वर्ग में पाता है ऐसे हिंसा दमन दानादि से और आचारादि से सुख पाता है।

स्वाध्यायो नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥

अर्थ—पठन पाठनादि में नित्य तत्पर रहना और दान देना मित्रता करना और दाता और लपणता का त्यागी ऐसे जो नर हैं सो सर्व प्राणियों को दयावान है।

वर्जयेन्मधुमांसं च भौमानि कवकानि च ।
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥

अर्थ—मद्य मांस का त्याग (भौम) का त्याग (कव) का त्याग करना मछली का त्याग करना इसका अत्यन्त फल होता है इन्द्रियों का रागद्वेषादि से रोकना और हिंसा का त्याग करना ऐसा जो मनुष्य है वह एक कल्प तक अमर रहता है।

मांसभोजी भवेद्रोगी मन्दबुद्धिस्तथैव च ।
तस्मान्मांसं न भुञ्जीयादिति प्राहुर्महर्षयः ॥

अर्थ—मांस के खाने से रोग उत्पन्न होता है और बुद्धि मन्द होती है इसलिये मांस न खाना चाहिये ऐसे महर्षि कहते हैं। फिर अज्ञात पापों के नाश के लिये किये जाते हैं ऐसे पञ्चयज्ञ नित्य करना मनुजी लिखते हैं।

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥

अर्थ—वेद का नित्य प्रति यथाशक्ति पढ़ना पञ्चयज्ञ करना क्षमा करना यह महापातकजनित पापों को भी शीघ्र नाश करते हैं पञ्चयज्ञ इसलिये नित्य करने को कहा है कि जो अनादृष्ट जीव चूल्हा, उखली चक्की आदि में मर जाते हैं उन पातकों के बचने के लिये पञ्चयज्ञ करने को कहा है इसी पुस्तक के ३० पन्ने में हम लिख आये हैं। अब देखिये कि अनादृष्ट जीवहिंसा के छूटने के लिये तो पञ्चयज्ञ करना लिखा है। भला प्रत्यक्ष यज्ञ में हिंसा करना पाप नहीं लगेगा। फिर यदि यज्ञ में पशु मारकर हवन करने या खाने की आज्ञा होती तो वेद में हिंसा करना मना न होता (स) वेद में पशु आदि का न मारना कहां मना किया है (गो) देखो यजुर्वेद अष्टात्रिंशोऽध्यायः मंत्र १४।

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष अहिंसक धर्मात्मा हुये आप ही धन विद्या राज्य और प्रजा को धारण करें वे सब

बल, विद्या और राज्य की प्राप्ति से भूमि और सूर्या के तुल्य प्रत्यक्ष सुखवाले होवें ॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृणं बृहस्पतिर्मेतद्दधातु । शंनो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ मंत्र षट्त्रिंशोध्याय, यजुर्वेद ।

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और आज्ञा पालन से अहिंसा धर्म को स्वीकार कर जितेन्द्रियता को सिद्ध करें ।

युधिष्ठिरजी ने यज्ञ के बारे में श्रीमहाराज भीष्मपिता जी से पूछा कि यज्ञ में जीव हिंसा करना चाहिये या नहीं, तो उन्होंने मना किया, यज्ञ में जीव हिंसा कभी करना चाहिये इस पर एक तपस्वी का दृष्टान्त दिया था देखो महाभारत के शान्ति पर्व्व के २७२ अध्याय में एक तपस्वी ने यज्ञ में एक मृग की हिंसा विचारी थी बस उसके विचारतेही उसकी सारी तपस्या नाश हो गई ।

तस्य तेनातु भावेन मृगहिंसात्मनस्तदा ।
तपो महत्समुच्छिन्नं तस्माद्धिंसा न यज्ञिया॥भा०

इस वास्ते महाराज भीष्मपितामहजी ने महाराज युधिष्ठिरजी को यज्ञ में हिंसा करना मना किया था वह प्रमाण आपको दिखाता हूँ देखो—

अहिंसा परमो यज्ञः अहिंसा परमं ज्ञानम्
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्
महा० अनु० अ० ११६ श्लो० १८

अर्थ—जीवों को न मारना ही परम यज्ञ है और हिंसा न करना ही परम मित्रता है और हिंसा न करना ही परम सुख है।

यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च
ते देवाः प्रोत्ययत्नेन योहि नास्ति न किंचन॥

अर्थ—जो मनुष्य जीव मात्र की हिंसा नहीं करता वह जिसका चिन्तन करता है जिस कर्म को करता है जिसमें ध्यान देता है उसे बिना परिश्रम प्राप्त होता है।

ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते।
अहिंसा लक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात्॥ म०॥

अर्थ—ऋषि लोग देव लोग वेद के प्रमाण को देखने से अहिंसा रूप धर्म को कहते हैं अर्थ धर्म का क्या है अहिंसा।

सर्वभूतेषु यो विद्वान्, ददात्यभयदक्षिणाम्।
दाता भवति लोके स प्राणानां नात्र संशयः॥ म०॥

अर्थ—जो विद्यमान सर्वभूतों को अभयदान अर्थात्

हिंसा नहीं करता है सो इस लोकमें प्राणियों को दान देनेवाला होता है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

एतं वै परमं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः ।
प्राणा यथात्मनोऽभिष्टा भूतानामपि वै तथा ॥
आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिः कृतात्मभिः ।
मृत्युतो भयमस्तीति विदुषां भूतिमिच्छताम् ॥
किं पुनर्हन्यमानानां तरसा जीवितार्थिनाम् ।
अरोगाणामपापानां पापैर्मांसोपजीविभिः ॥

अर्थ — इस धर्मको मुनि लोग सर्व उत्तम धर्म कहते हैं जैसे अपने प्राण अपने को अत्यन्त प्रिय होते हैं वैसेही सर्व भूतमात्र को अपने २ प्राण प्रिय होते हैं — इसवास्ते ज्ञानी लोग और बुद्धिमान लोगों ने अपनी सदृश दूसरे के भी प्राणों को जानना कहा है जब विभूति के चाहनेवाले विद्वानों को भी मृत्यु से भय होता है तो भला कहिये बिचारे निरोगी, निरपराधी अपने जीवन को चाहनेवाले पशुओं को (जो मारे जायँगे) पापी मांस खानेवालों से क्यों न भय होवे ।

सर्वभूतेषु यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणाम् ।
दाता भवति लोके स प्राणिनां नात्र संशयः ॥

अर्थ — जो विद्वान् सर्व भूतों को अभयदान देते हैं और

उनकी हिंसा नहीं करते हैं, वह विद्वान इस लोक में प्राणियों को दान देनेवाले होते हैं इसमें कोई संशय नहीं है।

अहिंसा परमोधर्मस्तथाहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतोधर्मः प्रवर्तते॥
अहिंसा परमोधर्मस्तथाहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥
अहिंसा परमो यज्ञस्त्वहिंसा परमं बलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥
अहिंसा परमं सत्यमहिंसा परमं श्रुतम्।

अर्थ―हिंसा नहीं करना यह उत्तम धर्म है, और उत्तम २ तप है। और अहिंसाही परम सत्य है जिससे धर्म चलता है; और अहिंसा परम धर्म है, और अहिंसा परमदम है और अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तप है और अहिंसा परम यज्ञ है और अहिंसाही परम बल है और अहिंसा परम मित्रता है और अहिंसाही परम सुख है और अहिंसाही परम सत्य है और अहिंसाही परम वेद है।

अधार्मिको नरो योहि सत्यचाप्यन्दतं धनम्।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते॥

अर्थ―जो मनुष्य अधर्मी है और जिसको पापी धन

मिलता है और हिंसा करने से नित्य संतप्त रहता है वह इस लोक में सुख को प्राप्त नहीं होता है।

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रकृते सति ।
यथा यथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथा तथा ॥

अर्थ—मनुष्य को और पशुओं को दुःख देने से जैसे २ दुःख बढ़ता है वैसेही वह दण्ड को पाता है।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयस्करं परम् ॥

अर्थ—वेद पढ़ना, तप करना, ज्ञानइन्द्रियों को दमन करना, हिंसा न करना, गुरुजनों की सेवा करना यही उत्तम कल्याण का मार्ग है।

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत् स्वर्गं तथाव्रतः ॥

अर्थ—हति जैसे स्वर्ग में जाता है वैसेही अहिंसा दमन दानादि से और आचारादि से सुख पाता है।

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥

अर्थ—इन्द्रियों को रागद्वेषादि से रोकना और हिंसा को त्याग करना ऐसा जो मनुष्य है वह एक कल्पतक अमर रहता है।

यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

अर्थ—जो मनुष्य प्राणियों को बधबन्धन क्लेश देने की इच्छा नहीं करता वह सब का हित चाहनेवाला पुरुष अनन्त सुख भोगता है।

अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः

अर्थ—सब भूतों से अहिंसक होकर धर्मानुकूल चलना चाहिये. अब हम आपको आर्य (हिन्दू) अनार्य (जो हिन्दू नहीं है) की परीक्षा करना बताते हैं—मनुजी महाराज १० अध्याय में लिखते हैं—

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥

अर्थ—वर्णापेत से मिश्र यदि कोई अविदित अविज्ञात (छिपा हुआ) अनार्य (नीच) आर्य बनें (यज्ञोपवीतादि धारण) करके रहे तो उसकी परीक्षा उसके कर्मों से करनी चाहिये. अब किन कर्मों से उसकी परीक्षा करनी चाहिये तो मनु महाराज यह भी लिखते हैं: जिन पुरुषों में यह २ बातें पाई जायँ तो जानना कि यह आर्य (हिन्दू) नहीं है अर्थात् यह अनार्य सन्तान है।

भेजते, हे भाइयो, हम निरपराधी जीवों पर दया करो; यदि ईश्वर को दर्बार में मुंह दिखाना चाहते हो तो

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज ।
क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत्पिब ॥

अर्थ—हे भाई यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष के समान छोड़ दो सहनशीलता, सरलता, दया, पवित्रता और सचाई को अमृत की नांई पियो ।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥

अर्थ—सत्य मेरी माता है, और ज्ञान पिता, धर्म मेरा भाई है, और दया मित्र, शान्ति मेरी स्त्री है, और क्षमा पुत्र, यही छः मेरे बन्धु हैं

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥

अर्थ—जिसका चित्त सब प्राणियों पर दया से पिघल जाता है उसको ज्ञान से, मोक्ष से, जटा से, और विभूत के लेपन से क्या ?

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः ।
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम् ॥

अर्थ—सब दान, यज्ञ, होम, बलि ये सब नष्ट हो

आते हैं, सत्पात्र को दान और सब जीवों को अभयदान ये दोनों नहीं होते। इसी वास्ते दयाहीन धर्म त्याग देना लिखा है। (स) ऐसा कहां लिखा (गो) देखो—

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्य्यां निस्नेहान्बान्धवांस्त्यजेत् ॥

अर्थ—दयाहीन धर्म को छोड़ देना चाहिये, विद्याहीन गुरु का त्याग उचित है, जिसके मुंह से क्रोध प्रगट होता होय ऐसी भार्य्या को अलग करना चाहिये और विना प्रीति के बांधवों का त्याग विहित है।

(स) मालूम होता है कि आप वेद को नहीं मानते हैं (गो) आपने कैसे जाना कि हम वेद को नहीं मानते हैं (स) वेदों में तो लिखा है कि यज्ञ में जीव मार कर होम करना चाहिये (गो) भाई इतने प्रमाण देने से भी आपके हृदय में दया नहीं बैठी अच्छा आप यह तो बताइये यज्ञ कितने प्रकार के होते हैं (स) आपही बताइये (गो) ५ प्रकार के यज्ञ हैं (स) कौन २ (गो) देखो—

द्रव्ययज्ञास्तपो यज्ञा योगयज्ञास्तथा परे
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ गी० अ० ४

अर्थ—१ द्रव्ययज्ञ २ तपयज्ञ ३ योगयज्ञ ४ स्वाध्याययज्ञ ५ ज्ञानयज्ञ यह ५ यज्ञ हैं अर्थात् धन से कस्तूरी केसरादि

सुगन्धित वस्तुओं को मिलाकर होम करने का नाम द्रव्य-यज्ञ है और चित्त को एकाग्र करने का नाम तपयज्ञ है और प्राणायाम का करना योगयज्ञ है पढ़ने का नाम स्वाध्याय यज्ञ है और आत्मा परमात्मा के यथार्थ ज्ञान का नाम ज्ञान यज्ञ है कि प्राचीन लोग यज्ञ आदि किया करते थे, अब आप बतावें कि किस यज्ञ में जीव को मार कर होम करते थे

(स) द्रव्ययज्ञ में (गो) भाई द्रव्ययज्ञ तो वास्ते दुर्गन्धी की निवृत्ति के लिये किया जाता था न कि दुर्गन्धी फैलाने के लिये किया जाता था, भला आपही न्याय से देखिये कि जिस घर में मांस पकाया जाता है वहां दुर्गन्धि उठती है या नहीं फिर वेदों में स्पष्ट घृत केसर कस्तूरी आदि होम करने की आज्ञा परमेश्वर देता है देखो—

स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सञ्ज्योतिषा ज्योतिः। अहः केतुना जुषताँ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा रात्रिः केतुना जुषताँ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा। मधु हुतमिन्द्रतमे अग्नावश्याम ते देव घर्म नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः॥

मंत्र ९ यजुर्वेद अष्टात्रिंशोध्याय।

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि प्राणों का जीवन और समर्थ जीवों के लिये अविश्राम के साथ कर्मों और

दिन रात को युक्ति से सेवन करें और प्रतिदिन प्रातःकाल सायङ्काल में कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्ययुक्त घृत को अग्नि में होम कर वायु आदि की शुद्धि द्वारा नित्य आनन्दित होवें।

विधेमते परमे जन्मन्नग्ने विधेमस्तोमैरवरे सधस्थे। यस्माद्योने रुदारिथा यजे तं प्रत्वेहवींषि जुहुरे समिद्धे॥ मं०२ अ०१ अ०२ अ०६ म०१।

भावार्थः—जो शुभ कर्मों को करते हैं वे श्रेष्ठ जन्म को प्राप्त होते हैं, जो अधर्म का आचरण करते हैं वे नीच जन्म को प्राप्त होते हैं जैसे विद्वानजन जलते हुये अग्नि में सुगन्धादि द्रव्य का होम कर संसार का उपकार करते हैं वैसे वे सब से उपकार को वर्तमान जन्म में वा जन्मान्तर में प्राप्त होते हैं।

आविष्ट्यतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत। मर्य्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा ३ जर्भुराणः॥ ५ मं०५ अ०२ अ०६ म०२।

भावार्थः—इस मंत्र में वाचक लु०—जो शुद्धान्तःकरण जन सुन्दर शोभित करते और घृतादि आहुतियों से होते हुये मन को धारण करनेवाले सब रूपों के प्रकाशक और न सहने योग्य अग्नि को सिद्ध करते हैं वे श्रीमान् होते हैं।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ।
स्वाध्याय ज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

अर्थ—केसर कस्तूरी आदिक द्रव्य अग्नि में होमने का नाम द्रव्ययज्ञ है चित की एकाग्रता का नाम तपयज्ञ है प्राणायाम का नाम योगयज्ञ है वेदादि का पढ़ना स्वाध्याय यज्ञ है आत्मा या परमात्मा के यथार्थ ज्ञान का नाम ज्ञान यज्ञ है इन यज्ञों को प्राचीन लोग करते थे जीव को मार कर कोई यज्ञ नहीं करते थे (स) आपने मांस मद्य निषेध तो बहुत किया परन्तु मनुजी मांस मद्य खाने की आज्ञा देते हैं देखो—

(१) न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
अर्थ मांस भक्षण करने, मद्य पान करने, परस्त्री गमन करने में दोष नहीं है और देखो—

(२) श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ।
भक्ष्यान्पंच नखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदत: ॥म०॥

अर्थ श्वाविध शल्यक गोध खड्ग कुर्म शशक ये पांच नखवाले भक्षण योग्य हैं और ऊंट को छोड़कर एक और दांतवाले जो हैं वे भी भक्षण योग्य हैं देखिये इसमें तो गौ भी है क्योंकि ये भी एक पंक्ति दांतवाली है यदि मनुजी उनको वर्जने चाहते तो ऊंट के साथ गऊ का भी नाम लिखते परन्तु नहीं लिख गये और देखो—

(३) भक्ष्याः पञ्चनखाः सेधागोधाकच्छपशल्लकाः।
शशश्चमत्स्येष्वपि हि सिंहतुण्डकरोहिताः ॥मि०॥

अर्थ—पञ्चनखी पशुओं में से सेधा गोह काछुवा साही शश और मछलियों में से सिंह तुण्डक रोह खाने के योग्य हैं (४) फिर रामकृष्णादि मांस मद्य खाते पीते थे (५) और प्राचीन देवी से मांस भोजनही मांगा करते थे क्योंकि मांस मद्य जो देवी का प्रसाद है उसके खाने से दोष नहीं मानते थे देखो ब्राह्मण लोग देवी का प्रसाद भैंसा बकरा अभी तक खाते हैं यथो मनुजी लिखते हैं—

क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परोकृतमेव वा ।
देवान्पितॄनश्चार्चयित्वा वा खादन्मांसं न दुष्यति ॥

अर्थ—मोल लेकर अथवा आपही उत्पन्न करके वा दूसरे किसी ने लाकर दिया हो उसको देवता वा पित्र उनको चढ़ाकर मांस खाने में दोष नहीं है—(गो) यह जितने आपने मांस खाने और मद्य पान करने के प्रमाण दिये हैं, यह सब मांसाहारी शराबाहारी वाममार्गियों के बनाये हुये है (स) इसका क्या प्रमाण है (गो) आपही विचारिये कि सब धर्मों में व्यभिचार करना, जूआ खेलना, शराब पीना, जुल्म (हिंसा) करना पाप लिखा है परन्तु वाममार्गी इसे पाप नहीं मानते किन्तु इन बातों को अच्छा

मानते हैं इसलिये उन्होंने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये कई श्लोक बनवाकर अथवा बनाकर शास्त्रों में भर दिये हैं देखिये भागवत में यह लिखा है—

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।
द्यूतपानस्त्रियस्सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥
पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात् प्रभुः ।
ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥

अर्थ—जब कलियुग ने राजा परीक्षित से अपने लिये स्थान मांगा तो राजा ने उसको इन स्थानों में रहने को वास दिया जूआखाना, शराबखाना, रण्डीखाना, कस्साईखाना, यह अधर्म स्थान कलियुग को दिये अर्थात् इन स्थानों में जाना मना किया है परन्तु वाममार्गी इन बातों के करने में मोक्ष मानते हैं देखो—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रामैथुननैव च ।
एते पंचमकाराःस्युर्मोक्षदा हि युगे युगे ॥

अर्थ—मद्य पान करने और मांस मछली खाने और जूआ खेलने और मैथुन करने में दोष नहीं है परन्तु ऐसा करने से मोक्ष है और देखो हमारे ऋषि तो—

प्रथमे ऽहनि चाण्डाली द्वितीये ऽहनि घातकी
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थे ऽहनि शुध्यति ।

अर्थ—जो स्त्री रजस्वला होती है सो पहिले दिन चाण्डालिन कही जाती है मानो जैसी चाण्डाल की स्त्री ऐसी उस्को समझना और दूसरे दिन ब्रह्मघातकी है मानो हत्यारीवत् होती है और तीसरे दिन धोबिन कही जाती है और चौथे दिन शुद्ध होती है परन्तु वाममार्गी इनसे गमन करने से पुण्य समझते हैं।

'रजस्वलापुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता।

अर्थ—रजस्वला के साथ गमन करने से पुष्कर तीर्थ के स्नान का फल मिलता है और चाण्डालिन के संग से काशीयात्रा का और चमारिन के संग मे प्रयाग त्रिवेणी के स्नान का और धोबिन के संग से मथुरा की यात्रा का और वेश्या (रण्डी) के संग से अयोध्या तीर्थ का फल मिलता है कहिये यह वाक्य महात्मा ऋषियों के कभी हो सकते हैं कभी बुद्धिमान मानेगा बस अपनी मत दृद्धि के लिये ऐसे ऐसे वाक्य बनाकर अथवा बनवाकर * शास्त्रों में भर दिये

* वाममार्गियों ने मद्य का नाम "तीर्थ" और मांस का नाम "शुद्धि" और मैथुन का नाम "पञ्चमी" रक्खा है जिससे दूसरा न जाने।

हैं जैसे पाश्चात्य ईसाई ईसाई की महाई के श्लोक बनवा कर मूर्ख लोगों को फँसा रहे हैं।

कुमारीकन्यासुतमेकजातं महाबलं तस्य पवित्ररूपम्। पुनश्च धर्मं नरहेतुकर्त्ताजगज्जनानां मरणं स्वयंयः। ।सत्यकथा पुस्तक।

अर्थ — कुँवारी कन्या (मरियम) एक पुत्र जनी यह बलवन्त था उस्का पवित्र रूप था वह जगत का सृजनहार होकर सकल मनुष्यों के लिये मरा। जैसे तम्बाकू भंग पीने वालों ने अपनी सिद्धि के श्लोक बना रक्खे है ऐसेही मांस खानेवालों ने भी बना रक्खे हैं देखो तम्बाकू के पीनेवाले कहते है —

जपादौ जपमध्ये च जपान्ते च पुनः पुनः धूम्रपान यदा न स्यात् मंत्रसिद्धि' कार्य भवेत् ॥

अर्थ — जप कि आदि, मध्य, अन्त में यदि तम्बाकू न पीया जाता तो कभी भी मन्त्र सिद्ध नहीं हो सक्ता है।

बिडौजापुरा पृष्टवानब्जयोनिं, जगत्सागरे सारभूतं किमस्ति। चतुर्भिर्मुखैस्तर्र तेन दत्तं, तमालं तमाल तमालं तमाल ॥

अर्थ — एक दिन इन्द्र ने ब्रह्माजी से पूछा कि जगत में सार वस्तु क्या है तब ब्रह्माजी ने चारों मुख से कहा कि

तम्बाकू तम्बाकू तम्बाकू तम्बाकू बस ऐसेही अपनी पुष्टता के लिये श्लोक बनाकर ग्रंथों में भर दिये परन्तु इन बातों को कुछ नहीं बिचारते कि यह सत्य है या असत्य है जो किसी ने कह दिया बस उसको सत्य मान लिया अब हम आपके उन श्लोकों का उत्तर देते हैं पहिले का उत्तर। यदि इस वाक्य को आप सत्य मानते हैं तो सर्व मांस आदमी से लेकर कुत्ते तक का क्यों नहीं खाते? दूसरे शराब पीने में दोष नहीं तो सब का जल क्यों नहीं पीते तीसरे यदि मैथुन करने में दोष नहीं तो माता भगनी कन्या से क्यों नहीं करते चौथे इसको तो आपने मान लिया इसके आधे पद को क्यों नहीं मानते—

प्रवृत्तिरेषाभूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ।

२ × ३ श्लोक का यह उत्तर है।

† एक दिन एक व्यासजी महाराज कथा करते थे कि अकस्मात उनकी अपान वायु निकल गई तब व्यासजी ने अपनी प्रतिष्ठा के लिये झट यह श्लोक कहा—

अपानवायुमहत्पुण्यं अग्रहाति धरमात्मना: ।
ग्लायती महापापीरयम् पुष्पो नन्दनवनम् ॥

अर्थ—जो धर्मात्मा अपान वायु को सुगता है उसको बहा पुण्य होता है और जो गिलानी करता है वह महा पापी है।

"अभ्यासे तु गङ्वगमश्वं कुञ्जरोष्ट्रौ च सर्वं पंचनखं तथा क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्सम्वत्सरव्रतम् ॥"

अर्थ—जो नर गाय, घोड़ा, हाथी और पांच नखवाले जन्तुओं अर्थात् मुर्गी कुत्ता आदिकों के मांस को भूलकर खा ले तो सम्वत्सर व्रत करे। चौथा वचन जो श्रीरामचन्द्रजी और श्रीकृष्णचन्द्रजी और श्रीदेवीजी पर कहा उसका उत्तर यह है कि यदि श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र मांसाहारी होते तो उनके अनुगामी वैष्णव लोग भी होते क्योंकि जैसा गुरु होता है वैसेही न चेला होता है दूसरे यदि श्रीरामकृष्णजी मांस मद्याहारी होते तो वह रावण कंसादि राक्षसों कोही क्यों मारते, आप जानते हैं कि गांजा पीनेवाला गांजे पीने वाले से मित्रता रखता नकि दुश्मनी बस ऐसेही समझो कि यदि श्रीरामकृष्णजी मद्य मांसाहारी होते तो कभी भी रावण कंस को न मारते किन्तु उनसे प्रेम रखते परन्तु प्रेम नहीं रक्खा उनको मारा क्योंकि वह मद्य मांस खाने से राक्षस हो गये थे इसलिये जीवों की रक्षा के लिये उनको मार दिया (प्र) अच्छा जब रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र मांस नहीं खाते थे तो शिकार अर्थात मृगों को क्यों मारते थे (गो) रामचन्द्रजी उन अनाथ मृगों को नहीं मारते थे परन्तु इन मृगों को मारते थे देखो रामचन्द्रजी कहते हैं—

हम छत्री मृगया बन करहीं ।
तुम से खल मृग खोजत फिरहीं ॥

अर्थ—जब खरदूषण का दूत श्रीरामचन्द्रजी से खर दूषण का सन्देसा कह चुका तब रामचन्द्रजी ने उत्तर दिया कि हम छत्री हैं इस बन में मृगों के शिकार के लिये आये हैं कैसे मृगों के तुम्हारे ऐसे खल मृगों को खोजते फिरते हैं। देखिये रामचन्द्रजी महाराज क्या कहते हैं अर्थात् राचसों का शिकार हम करते हैं (स) क्या इन राचसों के मारने में जीव हिंसा नहीं हुई (गो) दुष्टों के मारने में राजों को हिंसा नहीं होती देखो लिखा है—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिन मायान्त हन्यादेवाविचारयन् ॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वा ऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति ॥

अर्थ—गुरु, पुत्र, पिता, ब्राह्मण, चाहे बहुत शास्त्रों के श्रोता क्यों न हों जो धर्म छोड़ अधर्म में वर्तमान हैं दूसरे बिन अपराध के मारनेवाले हैं उनको बिना बिचारे मार डालना अर्थात् मार के पश्चात् विचार करना चाहिये दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना

मानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है । ऐसेही सिंह व्याघ्र पशुओं के भी मारने में दोष नहीं क्योंकि ये भी बहुत जीवों के नाशकारक हैं और जो मनुष्य होकर व्याघ्रादि पशुओं का आचरण करते हैं वही मनुष्य राक्षस है। "

अर्थ – जो मांस भक्षण करनेवाले हैं चाहे वे पण्डित भी हों राक्षस हैं क्योंकि रावण भी तो बड़ा भारी पण्डित था यहां तक कि सारी लंका में उसकी वेद पढ़ने और अग्नि-होत्र करने की आज्ञा थी देखो एक दिन श्रीरामचन्द्रजी एक पर्वत पर हवा खा रहे थे कि लंका में वेदध्वनि होने लगी श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमानजी से पूछा कि वेदध्वनि कहां होती है वहां हमको ले चलिये हम उन ऋषियों का दर्शन करें हनुमानजी ने कहा कि महाराज यह वेद ध्वनि लंका में होती है तब रामचन्द्रजी ने कहा कि लंका में पण्डित लोग हैं हनुमानजी ने कहा कि —

अग्निहोत्रं वेदाध्ययनं राक्षसानां गृहे गृहे ।

अर्थ—हे महाराज लंका में घर २ अग्निहोत्र वेद पाठ हुआ करता है यह हनुमानजी के वचन सुन श्री रामचन्द्रजी बड़ा पश्चात्ताप करने लगे कि हमने यह क्या किया कि जो एक स्त्री के वास्ते ऐसे उत्तम ब्राह्मणों के वध को आया हूँ यह कह धनुष पृथ्वी पर फेंक दिया तब हनुमानजी ने कहा कि हे नाथ बेशक लंका में वेदपाठी और अग्निहोत्री हैं परन्तु —

दयाधर्मविहीना च राक्षसाः सर्वं विद्यते ।

अर्थ - हे नाथ दया और धर्म से विहीन हैं अर्थात् मद्य मांस भक्षी हैं, यह सुन रामचन्द्रजी ने फिर धनुष उठा लिया कि यदि वे दया धर्म से विहीन हैं तो ऐसों के मारने का कोई दोष नहीं है। दूसरा सबूत यह दे आये हैं कि यदि श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रजी मांसाहारी होते तो उन के अनुगामी भी होते क्योंकि जैसे गुरु वैसेही चेला होता है सो प्रत्यक्ष देख लें कि श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रजी के अनुगामी वैष्णव लोग कैसे मांस से कोसों भागते हैं और जीव रक्षा के लिये अपना जीव दे देते हैं (स) तो रामचन्द्रजी शिकार क्यों खेलते थे (गो) श्रीरामचन्द्रजी उनका शिकार खेलते थे जो दुष्ट राक्षस माया की भेष बदल कर आते थे अथवा सिंह व्याघ्रादि दुष्ट जीवों को मारते थे। नकि अनाथ जीवों को (स) क्या सिंह व्याघ्रादिकों के मारने में पाप नहीं होता ? (गो) जैसे राजा को दुष्ट मनुष्यों के अर्थात् जो दस मनुष्यों को एक मनुष्य दुःख दे अथवा चोर डाँकुओं के फाँसी देने का पाप नहीं होता वैसेही सिंह व्याघ्रादि दुष्ट जीवों के मारने में पाप नहीं होता है और जो पांचवां प्रश्न देवी के बारे में किया सो हम पूछते हैं कि कभी देवीजी को किसी ने मांस खाते देखा है कभी कोई नहीं कह सकता कि हमने देवीजी को मांस खाते

देखा है परन्तु यह सब ने देखा होगा कि पशु को वध करके या तो पुजारी या यजमान ले जाते हैं। यहां यह दोहा याद आता है —

घं घं घं घं घंटा बाजै और करैं नक चपना।
देवी के मुख खून लगावैं गपक जात सब अपना॥

(२) प्राचीन समय में यदि कुछ दु:ख होता था तो अपनी दु:ख निवृत्ति के लिये देवीजी के मन्दिर में जाकर हवन करते थे अब हवन को तो छोड़ दिया सुगन्ध के बदले दुर्गन्ध फैलाने लग गये, और देवीजी का बहाना कर बकरे आदि जीवों को मार कुत्ते के समान उनकी हड्डी को चाटने लग जाते हैं यदि कोई पूछें कि भाई यह क्या करते हो तो उत्तर देते हैं कि हम देवी का प्रसाद खाते हैं परन्तु ये बुद्धिहीन यह नहीं सोचते कि यह देवी का प्रसाद कैसे हो सकता है क्योंकि ये तो बकरे बकरी का पेशाब है क्या जिस मांस को ये खाते हैं क्या वो बकरे बकरी के पेशाब से उत्पन्न हुआ नहीं है यदि नहीं है तो कैसे उत्पन्न हुआ यदि बकरे बकरी के मूत्र से उत्पन्न मानते हैं तो अपने मुंह से देवी की निन्दा कर सिर पर पाप लेते हैं दूसरे देवीजी को कभी किसी ने खाते नहीं देखा होगा हां उस मरे जीव को रावण की वंश के पुजारी ले जाते या कंस हरनाकश की वंश के यजमान जी ले जाते हैं देवो

जी को तो कभी खाते नहीं देखा। भला देवीजी मूत्र विष्ठा के भरे हुये मांस को क्यों खायेंगी। (स) देखो देवीजी ने महिषासुर शुंभ निशुंभ और रक्तबीजादि राक्षसों का रुधिर पीया था (गो.) भाई वह तो देवी के शत्रु थे उनका पीया होगा ऐसे अधर्मी शत्रुओं का तुम भी पीयो। परन्तु इन अनाथ भैंसे बकरादि निर्बलों को मत सताओ क्योंकि भैंसा बकरादि जीव तो देवी के शत्रु नहीं हैं इनको क्यों मारते हो (स) यह भी उनके वंश में से हैं (स) भाई वह तो राक्षस थे और यह तो अनाथ जीव हैं (स) यह भी राक्षसही हैं (गो) राक्षस तो तुमही हो जो इनका दूध भी पीते हो और इनका मांस भी खा जाते हो, और यह तो राक्षस नहीं हैं क्योंकि यह तो उपकारी जीव हैं जो घास पात खाकर तुमको अमृत दूध देते हैं (स) क्या मांस खानेवाले राक्षस होते हैं (गो) जी हां (स) ऐसा कहां लिखा है (गो) जहां २ राक्षसों का प्रकरण शास्त्रों में आया है वहां २ देख लो देखो मनुजी भी लिखते हैं —

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरां सवम् ।

अर्थ – मद्य मांस राक्षस पिशाचों का भोजन है। देखिये अब मांसाहारी राक्षस हुये वा नहीं। दूसरे यदि देवीजी राक्षसों को वध करतीं और उनका खून पीती थीं तो हम

उसमें यही मद मानते हैं कि यह मांसाहारियों काही बध करें और इनकाही रुधिर पीयें जो अनाथ जीवों को नाहक दुःखाते हैं। फिर यदि ऐसेही भक्त हैं तो अपना या अपने पुत्र का बध क्यों नहीं करते जो अनाथ बकरी के बच्चों का बध करते हैं। क्या बकरे में जीव नहीं है. क्या इनको मां को जन्मते समय दुःख नहीं हुआ होगा। जैसे जो बकरे खानेवाले की माताओं को इनके उत्पन्न करते समय दुःख हुआ था या होता है तीसरे जब देवीजी का नाम जगतमाता शास्त्रकारों ने झूठ लिखा है यदि सच्ची इसका नाम जगदम्बा है तो क्या बकरादि जीव जगत से बाहर हैं। क्या यह इनको माता नहीं है यदि है तो क्या यह डायन है जो यह बकरादि बच्चों को खाती है। कदापि नहीं खाती उसको सब जीव बराबर हैं। हे मांसाहारियो जीवहिंसा छोड़ दो नहीं तो किसी समय वह अपने अनाथ बच्चों की पुकार सुनकर तुमही को कहीं जड़मूल से नाश न कर दे क्योंकि वह कहती है –

यथा हि भक्त्या भवतां प्रसन्ना भक्त्या तथा लाद्विबलिप्रदानात्। नाहं प्रसन्नामपि मद्यपानात् यथा हि हिंसा परमो हि धर्मः॥

अर्थ – देवीजी कहती हैं कि मुझे जो मद्य मांस व-

होते हैं इन पर मैं प्रसन्न नहीं होती हूं परन्तु मैं उन पर प्रसन्न होती हूं। जो "अहिंसा परमोधर्मः" इस पर चलते हैं अर्थात् जो हिंसा नहीं करते हैं वही मेरे भक्त हैं। ५ वें यह जो आपने कहा कि प्राचीन लोग देवी से मांस भोजन मांगा करते थे यह आपका कहना झूठ है देखो प्राचीन समय के लोग देवीजी से यह वर मांगा करते थे

> कल्पवृक्षस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके ।
> क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमोनमः ॥
> दे० भ० ४८ अ० २१ ।

अर्थ — हे जगत माता हम वारम्वार तुझ को प्रणाम करते हैं कि तू हमको क्षीर अर्थात् गौवादि दूध देनेवाले जीव दे और धन दे और बुद्धि दे। देखो मांस कहीं नहीं मांगना लिखा है। परन्तु जीवों की रक्षा मांगा करते थे क्योंकि गौवादि जीवों की रक्षा बिना दूध, धन नहीं हो सकता है और न दुग्धादि पदार्थ खाये बिना बुद्धि हो सकती। और आपने जो कहा कि ब्राह्मण अबतक भैंसा चढ़ाते और मांस खाते हैं सो भाई कलियुग में ब्राह्मणही तो राक्षस हैं देखो लिखा है—

> कृतेषु दितिजा दैत्या-स्त्रेता दैत्याश्च राक्षसाः ।
> द्वापरे क्षत्रिया दैत्याः कलौ दैत्याश्च ब्राह्मणाः ॥

अर्थ—सत्ययुग में दिती के लड़के दैत्य थे और द्वापर में राक्षस दैत्य थे और त्रेता में क्षत्री दैत्य थे और कलियुग में ब्राह्मण दैत्य हैं* । सो भाई इसी वास्ते इनका नाश भी हो रहा है (स) कौन कारण है जिससे ब्राह्मणों का नाश हो रहा है (गो) देखो ऋषियों ने एक समय भृगुजी से पूछा था कि ब्राह्मण किस कर्म से नाश होते हैं तब भृगु जी ने कहा—

सतानुवाचधर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ १ ॥

अर्थ—महर्षियों के प्रति मनुजी के पुत्र धर्मात्मा भृगु जी बोले कि जिन दोषों से ब्राह्मणों को मृत्यु मारना चाहती है तिन्हें सुनिये—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥२॥

अर्थ—आलस्य कर वेद के अनभ्यास से सदाचार को छोड़ने से दूषित अन्न के भोजन से मृत्यु ब्राह्मणों को मारना चाहती है (स) वह कौन २ अन्न है जिसके खाने से ब्राह्मण को मृत्यु मारती है (गो) देखो—

*सब नहीं परन्तु जो अनाथ जीवों का मांस खाने वाले ब्राह्मण हैं वे राक्षस हैं ।

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुकवकानि च* ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च ॥

अर्थ—लहसुन, गाजर, प्याज, छत्राक, अपवित्र से उत्पन्न (चौलाई) आदि अन्न शाक यह सब ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यों को वर्जित है।

अनिर्दशायोगो: क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ।
आविकं सन्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गो: पय: ॥

अर्थ—दस दिन तक की ब्याई हुई गौ का उटिनी का एक खुरवाले पशुओं का भेड़ का विषय चाहनेवाली तथा बिना बछा की गौ का दूध वर्जित है।

आरण्यानां सर्वेषामृगाणां महिषं विना ।
स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥

अर्थ—जङ्गली पशुओं में भैंस को छोड़ सब का दूध त्याज है अर्थात् हाथी मृगादि समस्त बनवासियों में भैंसही का दूध पीना योग्य है और स्त्री का दूध तथा सम्पूर्ण शुक्त जो वस्तु स्वभाव से मधुर हों और कालान्तर में खट्टी हो

---

* लहसुन प्याजादि वस्तु मांस के साथी हैं क्योंकि बिना इनके मांस स्वादिष्ट नहीं बनता इस कारण से इन का भी खाना मना किया है।

साथ भी वर्जित है अब देखिये कि जब ऐसी वस्तुओं के खाने को मना किया है तो मांसादि खाने की मनुजी कैसे आज्ञा दे सकते हैं (प्र) इन वस्तुओं को क्यों मना किया है (उ) यह भी सब तामसी हैं और तामसी भोजन द्विजाती को खाना मना है देखो भगवान भी गीता में कहते हैं—

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः । आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः । यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं चयत्, उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामस प्रियम् ॥

अर्थ – कड़ुआ, खट्टा, खारा, बहुत गर्मागर्म, तीखा, रूखा और खाये होते तत्काल शरीर में दाह करनेवाला सरसो (आदि) यह सब पदार्थ राजसजनों को प्रिय हैं और दुःख शोक और रोग उत्पन्न करनेवाले हैं और जो अन्न रींधने को एक पहर भया हो रसहीन दुर्गन्ध युक्त ठण्डा बासी जूंटा अपवित्र कांदा (प्याज) लहसुनादि यह भोजन तामसीजनों को प्रिय हैं। छठवें शंका का उत्तर यह है कि यदि मोल लेकर अथवा आप उत्पन्न कर मांस खाने में दोष न होता तो मनुजी मनाही क्यों करते देखो—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

मनुजी महाराज ८ प्रकार के घातक लिखते हैं अनुमन्ता (१) मारने की सलाह देनेवाला, (२) मांस काटनेवाला, (३) जीव मारनेवाला, (४) जीव मारने के लिये लानेवाला, (५) बेचनेवाला, (६) मांस पकानेवाला, (७) मांस परोसनेवाला, (८) मांस खानेवाला इत्यादि घातक होते हैं। और यह जो आपने कहा कि पितृदेवताओं को चढ़ाकर खाने में दोष नहीं, सो भाई जिसके पित्र, देवता आर्य हैं वह तो मांस को ग्रहण कभी नहीं करते हैं। यहां जिनके पितृदेवता, पीर, पैगम्बर, भूत, प्रेत, डाकिनी शांकिनी होंगे वह स्वीकार करते होंगे क्योंकि मनुजी कहते हैं— मं० अ० ११ श्लोक ९५।

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः॥

अर्थ— राक्षस पिशाचों का जो भोजन मद्य मांस है इसको देवता, ब्राह्मण यज्ञादि कर्म करनेवाले कभी ग्रहण न करें। (स) भला मधुपर्क क्यों खाते थे? क्योंकि मधुपर्क तो मांस से ही बनता था देखो (१) "नामांसो मधुपर्को भवति" अर्थात् बिना मांस के मधुपर्क कभी नहीं होता—

(२) मधुपर्काङ्ग भोजनमं मांसं न भवतीत्यर्थः।
कुतः मांसस्य भोजनं गत्वेनलोके प्रसिद्धत्वात्॥

अनेनास्युपायेन भोजनमप्यत्र विहितं भवति पशुकरणपक्ष तन्मांसेनभोजनमुत्सर्जनपक्षे मांसान्तरेण॥

अर्थ – जब पशु बध किया जावे तब उसका मांस भोजन के काम में लाना और यदि वह जीता हुआ छोड़ा जावे तो और उपाय से मांस का लाना चाहिये क्योंकि बिना मांस के यह विधि कभी पूरी नहीं होती है—और देखो मनुजी लिखते हैं कि जब ब्रह्मचारी घर में आवे तो गौ मारकर उसके मांस से मधुपर्क बनाकर पिता उसको दे—

(३) तं प्रति तं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः स्त्रग्विणं तल्पआसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा॥

अर्थ – वह जो अपने धर्म से वेद पढ़कर आया हो तो उसका पिता अथवा गुरु माला करके अलंकृत और शैय्या पर बैठे हुये उसको गौ अर्थात् गौमांस से बना हुआ जो मधुपर्क है उससे पूजन करें (गो) प्रथम वाक्य में जो आपने कहा कि बिना मांस के मधुपर्क नहीं बनता सो आपकी भूल है क्योंकि मधुपर्क तो आज तक दही, घृत, मधु (शहद) का बनाया जाता और ऐसेही बनाने की आज्ञा शास्त्र में लिखी है देखो—

दधिमधुमपिहितकांस्येकांस्येना, इत-ब्रह्मसूत्रम्।

* अर्थ—ब्रह्मसूत्र में लिखा है कि दही, घृत, मधु से मधुपर्क बनाओ—

(२) श्लोक का उत्तर यह है कि यदि मधुपर्क मांस का बनता तो मांस खाने की मनाई न होती; जैसे पीछे हम मांस निषेध दिखा चुके हैं।

(३) यह जो आपने कहा कि मनुजी कहते हैं कि ब्रह्मचारी को गोमांस का मधुपर्क बनाकर उसका पिता दे सो यह आपका कहना झूठ है क्योंकि इस श्लोक का अर्थ यह है—

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः
स्रग्विणं तल्पआसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥

अर्थ—इसका यह है कि जब पुत्र वेदादि शास्त्रों को पढ़कर घर में आवे तो पिता माला करके अलंकृत अर्थात् छाती को हृदय (छाती) से लगा पास बैठाकर प्रिय वाणी से सत्कार करें क्योंकि पिता, गुरु के सत्कार प्रकरण में गो नाम वाणी का है देखो "गोवादि नाम निघण्टु" अ० १ ख० ११ गौ नाम वाणी का है जैसे यह श्लोक है—

* अभी तक देहातों में यह परिपाटी है कि जब कोई घर में आता है तो प्रथम उसको दही, अथवा दूध और मीठा मिला रस बनाकर पिलाते हैं।

देखो "बिना गोरसं को रसो भोजनानाम्। बिना गोरसं को रसो भूपतिनाम्। बिना गोरसं को रसो कामिनीनाम्। बिना गोरसं को रस: पण्डितानाम्"। अर्थात् बिना गोरस जो घृत है उसके बिना रसोई शोभा नहीं पाती और बिना भूमि के राजा शोभा नहीं पाता और बिना पति के कामिनी (स्त्री) शोभा नहीं पाती और बिना प्रिय वाणी के पण्डित शोभा नहीं पाते। देखिये यहां गो नाम वाणी का आया है, ऐसेही यहां भी वाणी काही अर्थ है, खाली गो नाम गाय काही नहीं है प्रकरणानुसार गो के कई अर्थ होते हैं। दूसरे मधुपर्क ६ मनुष्यों को देना लिखा है—

षडर्घ्या भवन्त्याचार्य्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातक इति। गृह्यसूत्रम्।

अर्थ—(१) गुरु (२) अग्निहोत्री (३) वर (४) राजा (५) ब्रह्मचारी मित्र (६) देखिये यहां पुत्र, शिष्य का तो नामही नहीं है (स) यहां पुत्र, शिष्य काही नाम ब्रह्मचारी है (गो) भाई ब्रह्मचारी तब तक कहा जाता है, जब तक गुरु गृह में रहता है उस समय जब ब्रह्मचारी भिक्षा को जावे तो गृहस्थी उसको मधुपर्क से सत्कार करे किन्तु गुरुगृह में और पिता गृह में उसको मधुपर्क नहीं दिया जाता क्योंकि वह वहां मधुपर्क का अधिकारी नहीं है यदि होता तो उसका भी नाम उपरिलिखित वाक्य में लिखा जाता कि यह

सात मधुपर्क के अधिकारी हैं, परन्तु उर्दू लिखित वाक्य में छेदी लिखे हैं। बस आपके उस श्लोक का तात्पर्य यही है कि जब पुत्र गुरुगृह से घर आवे तो पिता उसको प्रियवाणी से सत्कार (प्यार) करे और जब गुरुगृह में आवे तो गुरु उसको प्रियवाणी से उसको पढ़ावे (तीसरे) ब्रह्मचारी को तो मधु मांस खाने की आज्ञा ही नहीं क्योंकि यदि वह खाये तो उसका ब्रह्मचर्य नाश हो जाय देखो लिखा है—

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्या परिग्रहा यमाः।

योग० पा० सू०

अर्थ—ब्रह्मचारी को इन ७ बातों का साधन करना चाहिये अहिंसा, सत्यभाषन, वैराग्य, चौरीत्याग, जितेन्द्री, निर्भिमानता इत्यादि रखना चाहिये। अब देखिये यदि हिंसा करे अथवा कराये तो वह ८ प्रकार के पापियों में पापी हो जायगा फिर ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है—

(४) यदि मधुपर्क गोमांस से बनाया जाता तो मनुजी गोरक्षा के लिये प्राणदेकर रक्षा करना क्यों लिखते देखो—

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत्।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च॥

अर्थ—गो ब्राह्मण की रक्षा से तथा इनकी रक्षार्थ प्राण त्यागने से ब्रह्महत्यादि पाप छूट जाते हैं—

(प्र) वेदों में इस्को अवध्या लिखा है अब यह भी हनन को योग्य है नहीं तो मनुष्य उसको हनन करना कभी लिख सकते हैं (उ) वेदों में कहां लिखा है कि गौ मारने को योग्य नहीं है (गो) देखो — यजुर्वेद अ० १ मं० १।

इषेत्वोर्जे त्वा वायवस्थदेवो वः सविताप्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्रायभागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मामावस्तेनईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यातबह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥ १ ॥

अर्थ—मंत्र के ३५ पद हैं और इसका अर्थ यह है कि हे पलास शाखे तुम्हें (इषे) सब अन्नों की निष्पत्ति के अर्थ और (ऊर्जे) बल के अर्थ तोड़ता हूँ और हे वत्सा तुमको (वायवस्था) दिन में इधर उधर घास पात खाकर सायं को यजमान के घर पवन ऐसे वेग से आओ। हे गौ हो। (व) तुम्हें (सविता) प्रेरणा करनेवाला (देवः) परमेश्वर (श्रेष्ठतमाय कर्मणे) यज्ञ के अर्थ (प्रार्पयतु) अच्छी घासवाले वन में ले जाओ "हे" (अघ्न्या) हन्तुं अयोग्या गौ अर्थात् जो किसी दशा में मारने योग्य नहीं हो अथवा अघ पापों के नाश करनेवाली गौ हो तुम (इन्द्राय भागम्) इन्द्रदेवता

के अर्थ जो भाग है तिसे (आप्यायध्वम) बढ़ाओ। कैसी तुम हो (प्रजावती) अनमीवा लक्षा बछड़े बछड़ीवाली। रोगरहित। खुलो चरनेवाली हो। और (स्तेन) चोर (वः) तुम्हें चुराने को (मा) मत (ईशत) सामर्थ्यवान होओ अर्थात मत चुराओ और (अघशंस) व्याघ्र तुम्हारी (मा) मत (ईशत) हिंसा करें, और हे गौ हो तुम (अस्मिन) इस (गोपती) गोरक्षा करनेवाले यजमान के घर (ध्रुवा) सदैव काल (बह्वी) बहुत होओ, और हे दण्ड। तू (यजमानस्य पशून् पाहि) यजमान की गौओं की रक्षा कर? अब देखिये इसी एक मंत्र में स्थालीपुलाकन्याय से परमेश्वर ने गौओं का का महत्व, और इनकी रक्षा करना तथा गौही वैदिक कर्मों की आदि कारण हैं और इसे वास्ते इसको "अघ्न्य" अर्थात यह हनन अर्थात मारने योग्य नहीं है कह दिया है अच्छा और देखो —

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादि त्यानाममृतस्य नाभिः। प्रणुवोचं चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिंवधिष्ट। ममवामुष्य च उभयोः पापम्। छिन्तः उत्सृजततृणान्यतु॥

इस मंत्र का संक्षेप से अर्थ यह है कि परमेश्वर कहते हैं कि (चिकितुषे) जिज्ञासा करनेवाले या दया करनेवाले

वा चेतनावाले (जनाय) मनुष्य के अर्थ (प्रवोचम) "अघ न माद्यायोग इत्यादिना अज्ञानमनिषेधः" बारम्बार कहता आया हूं। क्योंकि (गां) गौ को (मा) मत (वधिष्ट) मारो कैसी गौ है (अनागां) कभी अपराध करनेवाली नहीं है और (अदितिं) दितिः खण्डनं हिंसा वा यस्य नास्ति; अर्थात् इसको कभी नहीं मारना चाहिये। इसलिये गौओं की रक्षा करनी चाहिये क्योंकि यतः (रुद्राणां माता) एकादश रुद्रों की माता है अतएव क्रूरस्वभाववाले वनिष्ट तथा हाकिम लोगों को अपनी माता की,तरह गौ की रक्षा करनी चाहिये। और (वसूनां दुहिता) अष्टवसूओं की पुत्री है इसलिये धनाढ्य पुरुषों को अपनी पुत्री की तरह गौओं का पालन कर्तव्य है। और (आदित्यानां स्वसा) द्वादश सूर्यों की भगनी है इसी कारण से राजा महाराजा लोगों को अपनी बहिन की तरह गौओं की पूजा मानरक्षा करना योग्य है – क्योंकि यह गो (अमृतस्य नाभिः) देवताओं के भक्ष्य पायस आदि की उत्पत्ति का स्थान है अथवा दान करने से मोक्ष की देनेवाली है। सच्चिदानन्द परमेश्वर कहते हैं कि (मम) मेरा "च पुनः" (अमुंय) जिज्ञासा करनेवाले का (पापमाकतः) गोरक्षा का उपदेश और भक्ष करने से पाप,दूर और (ॐ। गौओं की (तृणान्यत्तुं) घास पात खाने को। यह कैसी को (उत्सृजत) अच्छे मन में

कोवो। अब देखिये जब ईश्वरही गोरचा करने की आज्ञा देता है वह वध की कैसे आज्ञा देगा और देखो —

यजुर्वेद अयस्त्रिंशोध्यायः मंत्र १४

त्वे अग्ने स्वाहुतप्रियासः सन्तुसूरयः। यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥१४॥

अर्थ — हे मनुष्यों जैसे विद्वान् लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर निद्रालों के मारने को दुष्टों को मार और गौ आदि की रचा कर मनुष्यों के प्यारे होते हैं वैसे तुम भी करो। १४।

इमᳩसाहस्रशतधारमुत्सं व्यच्यमानᳩसरिरस्य मध्ये। घृतं दुहानामदितिं जनायग्नेमाᳩहिंसीः परमे व्योमन् ॥ गवयमारण्यमनुते दिशामितेन चिन्वानस्तन्वोनिषीद। गवयन्ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ य० अ० १३ मं० ४९।

हे राजपुरुषो तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम जिन गौ आदि से दूध घी आदि उत्तम पदार्थ होते हैं कि जिनके दूध आदि से सब प्रजा की रचा होती है उनको कभी मत मारो और जो इन उपकार के पशुओं को मारें उनको राजा आदि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें—

अनागोहत्यावैभीमाकृत्ये मानोगामश्वं पुरुषं वधीः ॥ अथर्व वेद कां०१० प्र०१ अन०७ मं०२९

अर्थ-सर्व पराधीन गौकी हत्या परमही भीषण भयंकर है।

यदिन्द्राहं यथात्वमीशीयवस्वएकइत। स्तोता मेगोसखास्यात्॥ शिक्षेयमस्मैदित्सेयं शचीपते मनीषिणे यदहं गोपतिः स्याम्। धेनुष्टइन्द्रसूनृता यजमानाय सुन्वते ॥ गामश्वं पिप्युषीदुहे।

सामवेद ०छ०उ सं०प्र०११ मं०८।

अर्थ - हे इन्द्र यदि हमको आप समर्थ दें तो हम और अपने अनुगामियों से गोरक्षा करवावें।

यदा कदाच मीढुषे स्तोताजरेतमर्त्यः। आदिद्वंदेतवरुण विपागिराधर्तार विव्रताना ॥ पाहिं गा अधसोमदइन्द्राय मेध्यातिथे.। यः संमिश्लोहर्योर्योहिरण्ययइन्द्रो वज्रीहिरण्य यः ॥ सा० छ० प्र ४ म ६+७

अर्थ—यदि किसी से किंचित भी गौ को पीड़ा दी गई हो तो उस पाप की निवृत्ति के लिये (इत) अर्थात गौओं के स्वामी जो वरुण हैं उनकी अस्तुति अर्थात प्रार्थना करें कि मुझ से जो गौ का अपराध हुआ उस पाप से मेरी रक्षा करो। और देखो भागवत—

विप्रागावाश्च वेदाश्च क्रतवश्च हरेस्तनुः ।

अर्थ - ब्राह्मण, गाय, वेद यज्ञ ये हरी के शरीर हैं और देखो भगवान गीताजी में कहते हैं कि—

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मिकामधुक् ।

देखो भगवान कहते हैं कि गाय मेरा स्वरूप हैं जब उनका स्वरूप है तो गोवध नहीं होता मानो कृष्ण वध होता है कृष्ण भक्तो गोरक्षा करो २७ अ० १० ।

आचार्यञ्चप्रवक्तार पितरं मातरं गुरुम् ।
न हिंस्याद् ब्राह्मणान् गाश्चसर्वा श्चैवतपस्विनः ॥

अर्थ—आचार्य और पढानेहारे और माता पिता और गुरु और गौ और ब्राह्मण और तपस्वी को वध न करना चाहिये।

गामुद्धृत्य नरः स्वर्गे कल्पभोगानुपाश्नुते ।
गोवधेन नरा याति नरकानेकविंशतिम् ॥

अर्थ - विष्णुधर्मोत्तर में लिखते हैं कि गोरक्षा करने से अनन्त कल्प स्वर्ग होता है और गोवध से २१ नर्क भोगना पड़ता है अब कहिये जब हमारे ऋषि लोग ऐसा लिख गये हैं तब भला कौन गौ मार सकता है।

ये ताडयन्ति गाः क्रूराः शपन्ते च मुहुर्मुहुः ।
दुर्बला येन पुष्यन्ति सततं ये त्यजन्ति च ॥

अर्थ—शिवपुराण धर्मसंहिता में लिखा है कि जो नर गाय का पालन नहीं करता है और जो गाय का त्यागन करता है और जो ताड़ना करता है और जो गाली देता है वह नर दुःख नाम नर्क में पड़ता है।

यस्त्वेता मानवो धेनुं श्रद्धयामरपूर्यिकां करोति सततं कालिमोग्निनाशोपकल्पते । यस्तां जहाति या गृहस्थस्य' तामिस्रेसनिमज्जति ॥

अर्थ शिवपुराण धर्मसंहिता में लिखते हैं कि जो श्रद्धापूर्वक बराबर गाय का सेवा करते हैं वे अग्निलोक में वास करते हैं और जो गृहस्थ गाय को मारेंगे वे अंधकार नर्क में पड़ते हैं। और देखो शंखमुनि अपनी संस्कृति में लिखते हैं कि—

गा. रक्षितास्वपीतासुनपि वेन्नतिष्ठत्सूपविशेन्न-स्वयमुत्थापयेत् । शनेरार्द्रशाखया स पलाशया पृष्ठतामिहन्यात् । इति सूत्रम् ।

अर्थ—शंखमुनि कहते हैं कि गाय की सदा रक्षा सेवा करो चाहे सूधी हो चाहे खरहट हो चाहे पानी पीती हो चाहे बैठी हो कभी उसको न हटाना और न छेड़ना परन्तु धीरे २ पीछे से जाकर कोमल हरा घास उस को डाल देना चाहिये।

वालवृद्धरोगार्त्ताः श्रान्ता उपासीतशक्तितः
प्रतीकारं कुर्य्यात् गवां एषधर्मः अन्यथा विलवः।
इति संखसूत्रम्।

अर्थ—जो बाल, वृद्ध, रोगी, बड़े श्रम से शक्ति अनुसार गाय की सेवा करेंगे वो सदैव सुख पावेंगे और यदि न करेंगे तो नाश हो जायँगे।

ब्राह्मणानां गवामंगे यो हन्ति मानवोऽधमाः
ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य न संशयः॥ भ० पु०

अर्थ—जो गाय और ब्राह्मण को मारता है वह पापी नर्क भोगता है।

नारायणांशानविप्रांश्च गावश्चे हन्ति मानवाः।
कालसूत्रं च ते यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ भ०पु०

अर्थ—ईश्वर के अंश गो ब्राह्मण को जो मारता है वह चन्द्र सूर्य पर्यन्त काल सूत्र नर्क में वास करता है—(स) देखो एक हिन्दू डाक्टर राजा राजेन्द्रलालजी जो संस्कृत अंग्रेजी के बड़े पण्डित थे और पण्डित लोग उनका मान भी करते थे वह अपनी "हिन्दूआर्य्यपुस्तक" में लिखते हैं कि प्राचीन समय के लोग गोमांस खाते थे। (गो) भाई जो हिन्दू होगा वह तो ऐसा कभी अपनी पुस्तक में न लिखेगा हां यदि कोई ऐसा लिखेगा भी तो या

वह गोमांसहारियों का खुशामदी होगा और या वह खुद होटल में खानेवाला, या विलायत यात्रा करने के समय नाश हुआ होगा इस वास्ते औरों के नाश करने के लिये प्रमाण लिखा होगा कि यदि विलायत जाओ तो खाने में दोष नहीं है और यह जो आपने कहा कि वह बड़े पंडित थे तो क्या वह रावन से भी बड़ के पण्डित थे। और यह जो कहा कि पण्डित उस्का मान करते थे सो भाई पंडित तो आजकल रुपये का मान करते हैं आपही दो आपही का मान करने लग जायेंगे। और यह जो कहा कि डाकूर साहब अपनी "हिन्दूआर्य्यपुस्तक" में लिखते हैं कि प्राचीन समय में लोग गोमांस खाते थे सो यह कहना झूठ है क्योंकि उन्होंने उक्त पुस्तक के १५८ पत्रे में लिखा है हां महाभारत रामायण में इशारा तो है परन्तु कोई ठीक प्रमाण गोमास खाने का नहीं मिलता है अब देखिये कि जब कोई प्रमाण ठीक नहीं मिलता तो डाकूर साहब कैसे कहते हैं कि प्राचीन समय में गोमांस खाते थे दूसरे डाकूर साहब ने प्रमाण चर्कसुश्रुत के दिये हैं और यह नहीं विचारा कि यह ग्रंथ वैद्यक के हैं इन पुस्तकों में वस्तुओं का गुण अवगुण लिखा है। तौभी उनमें खाने की आज्ञा नहीं है देखो चर्कसुश्रुत से भी पुराने बौधायन ऋषि और शातातप ऋषि कहते हैं कि—

अग्निर्मांद्यं भवेतस्य यस्त्रेताग्निविनाशक: ।

अर्थ – शातातप ऋषि कहते हैं कि गोमांस खानेवाले की अग्नि मन्द हो जाती है और तीनों प्रकार की अग्नि का नाश भी हो जाता है।

गोमांसखादको मन्दजठराग्निर्भवेन्नर: ।
कर्मसं अकारणगरं दत्वाप्रमादमति: ॥
पुन: मन्दाग्निर्भवेदेवमल्पमृत्युश्च जायते ।

अर्थ - बौधायन ऋषि कहते हैं कि गोमांस खानेवाले जो मनुष्य इनकी जठराग्नि मन्द हो जाती है कर्म के साथ निष्कारण विष दे करके भी मेराग्नि हो करके मल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं (स) यदि खा ले तो ऐसा दोष नहीं है जैसे मद्यपान करने में मनुजी मर जाना लिखते हैं परन्तु गोमांस खा लेने से तो परम धाम मिलता है फिर गोमांस खाने में हिन्दू क्यों डरते हैं क्या परम धाम जाने को इनका चित नहीं चाहता है (गो) यह आपने कैसा जाना कि गोमांस खाने से परम धाम मिलता है। (स) देखो मत्स्यपुराण में लिखा है कि एक बार ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि कौशिक के पुत्र किस रीती से परम गति को प्राप्त हुये। तब सूतजी ने कहा कि कौशिक के सात पुत्र थे कौशिक के मरने के बाद बड़ा अकाल पड़ा जब उनके पास एक दिन कुछ खाने को नहीं रहा तब

वह गर्ग मुनि के पास चले गये मुनि ने उनको अपनी गौ चराने के लिये वन में भेज दिया. वे वन में जाकर भूख के मारे गौ को मारकर देव पितरों को चढ़ाकर खा गये और सन्ध्या को ऋषि से आकर कह दिया कि गौ को सिंह खा गया बस इसी कारण वह परमधाम को चले गये (गो)। यह आपका कहना सर्वथा मिथ्या है कि वह परमधाम को चले गये परन्तु वह उस पाप से ५ जन्म तक दुःख से छुटकारा नहीं पा सके ऐसा लिखा है देखो –

सप्तव्याधादृशार्णेषु मृगाः कालंजिरे गिरौ ।
चक्रवाकाशरद्वीपे हंसाःसरसिमानसे ॥
तेपिजाताःकुरुक्षेत्रे ब्राह्मणाः वेदपारगाः ।
प्रस्थितादीर्घमध्वानं यूयंतेकिम् वसीदथ ॥

अर्थ – प्रथम जन्म में वह दशार्णवन में व्याधा हुये और दूसरे जन्म में कालिंजर पहाड़ पर मृग और तीसरे में तालाब के चकवा और चौथे जन्म में मानसरोवर में हंस और पाचवें में कुरुक्षेत्र में वेदपाठी ब्राह्मण हुये तब उस जन्म में देशाटन कर बड़े परिश्रम से शुद्ध हुये प्रियवर। देखिये इन्होंने भूख के मारे यह काम किया था तब इनकी ऐसी दशा हुई हुई भला जो जानकर अर्थात स्वाद के लिये गौ आदि पशुओं को मारकर खायेंगे उनकी कैसी दशा होगा सो वह परमेश्वरही जानते हैं और यह जो आपने कहा

कि गोमांस खाने का कोई दोष ऐसा नहीं है जैसे मनुजी मद्यपान करनेवाले को मर जाना लिखते हैं सो भाई यह आपकी भूल है क्योंकि गोमांस तो तब खायेगा जब प्रथम गौ को मार लेगा सो हमारे यहां मारना तो दूर रहा खाली ताड़ना अथवा मारने का विचार करने सेही नर्क मिलता है,।

यो हन्ति ब्राह्मणी गां च क्षत्रियां च नृपोत्तम।
स एता यातनाः सर्वा भुंक्ते कल्पेषु पंचसु ॥

अर्थ—वृहन्नारदीय में लिखते हैं कि हे राजन जो मनुष्य ब्राह्मणी क्षत्रियाणी वा गौ के मारने का विचार करेगा वह पुरुष पांच कल्प तक चाण्डाल के घर में जन्म लेगा।

ताडयेद्यस्तुवै मोहाद्गास्तुकश्चिन्नराधमः ।
स गच्छेन्नरकं घोरं सम्पीडकमिति श्रुतिः ॥

अर्थ—विष्णुधर्मोत्तर में लिखते हैं कि जो दुष्ट मोहादि से गौओं को ताड़ना करता है वह चाण्डाल घोर नर्क में पड़ता है जिसका नाम वेद में सम्पीडक नर्क है। (स) गोवध का कोई बड़ा प्रायश्चित नहीं है।

शक्तुयावकभैक्ष्याशी पयोदधिघृतं शकृत् ।
एतानि क्रमशोऽश्नीयान्मासार्द्धं सुसमाहितः ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा गां दद्यादात्मविशुद्धये ॥

अर्थ - गोहत्या करनेवाला अपनी शुद्धता के लिये १५ दिन तो क्रम से सब और भोजन में क्रम से दूध दही घी गोबर इन वस्तुओं को भोजन करे ब्राह्मणों को जिमावे गोदान करे। फिर याज्ञवल्क्य लिखते हैं -

पञ्चगव्यं पिबन् गोघ्नो मासमासीतसंयतः ।
गोष्ठशया गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुध्यति ॥

अर्थ—गौ के मारनेवाले की शुद्धता के लिये ये कार्य्य अवश्य हैं अर्थात् पञ्चगव्य खाना गोशाले में सोना भर सोना गौ की सेवा करना और सारी हुई गौ को सन्ती एक गौ का मोल देना। (गौ) ये जो गोवध के प्रायश्चित्त आपने कहे हैं ये अनाहटि गौ यदि किसी से मर जाय उस के वास्ते हैं शायद आपने कभी देखा भी होगा कि यदि किसी से अनाहटि अर्थात् भूलकर जैसे गले में रस्सा कस जाने इत्यादि कारणों से गौ मर जाती है तो उस मनुष्य को मनुजी के इस श्लोक के अनुसार प्रायश्चित कराते हैं।

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥

अर्थ – गौ के मारनेवाला उपपातकी एक मास तक यव (जौ का दलिया) पीवे और शिखा, श्मश्रु (चुटिया) मोछ, सहित केशों को मुण्डन करा चर्म को धारण

कर गोशाला में निवास करा करे। उसको शहर गाँवडे में भीख मँगाकर और हरिद्वार काशी आदि तीर्थों में भेज कर शुद्ध कराते हैं क्योंकि गौ हमारे शास्त्र में अघन्या लिखी है अर्थात यह हनन योग नहीं है जो हनन योग्य नहीं है तो उसको हनन करना महापाप है जैसे माता पिता गुरु का हनन करना पाप है ऐसाही गौ हनन करना पाप है इसी वास्ते परमेश्वर वेद में कहते हैं कि राजा गोहिंसकों को मारकर गौओं की रक्षा करे(स)ऐसा कहां लिखा है?(गौ)देखो ऋग्वेद मं २ अ० २ सू० १४ मं० ३

अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हिवलंवः। तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः॥ ३॥

अर्थ जो राजपुरुष भयानक गोहत्या करनेवालों को मारते हैं और उत्तमों की रक्षा करते हैं वे निर्भय होते हैं (स) अच्छा गोरक्षा करना तो आपके यहां बड़ा पुण्य है परन्तु गौ बैलों को नित्य दुःख देना भी कुछ आपके यहां पुण्य है जो हिन्दू निसदिन गौ को ऐसी जगह बाँध रखते हैं कि जहां जाड़ों में न धूप आती है और गर्मियों में अति गर्म रहती है और बैलों को दिन भर हल गाड़ी में जोते रहते हैं और ऐसे २ कष्ट देते हैं कि देखकर चित्त बिगड़

जाता है (गो) भाई हिन्दू इसी पाप से तो दिन २ नाश ही रहे हैं यदि यह गोमहात्म्य जानते तो गौ बैलों को ऐसा दुःख न देते देखो हमारे ऋषि मुनि लिख गये हैं कि जो गौ बैलों को ऐसा कष्ट देते हैं वह गोहत्यारे होते हैं देखो शिवपुराण धर्मसंहिता में यह लिखा है—

योर्द्धयामात् प्रहराद्वा संयतान्नविमुञ्चति ।
वैभागक्रान्तरोगार्तान् गोष्टपश्च क्षुधातुरान् । न
पालयन्ति यत्नेन गोघ्नास्तेनारका स्मृता: ॥

अर्थ—जो गौ को दो घडी अथवा चार घडी एकही स्थान में बँधे रहने देता है और बैलों को गाड़ी अथवा हल से दो या चार घड़ी पीछे नहीं खोलता और रोगी भूखी गाय बैल का पालन नहीं करता वह गोहत्यारा हो नर्क में जाता है (म) क्योंजी जो बैलों को बधिया करता है उसको कुछ पाप लगता है या नहीं (गो) जी हां पाप लगता है देखो शिवपुराण धर्मसंहिता में लिखा है कि—

वृषणां वृषणा ये च पापिष्ठा: गालयन्ति च ।
वाहयन्ति च गा वध्यां महानारकिणो नरा: ॥

अर्थ—जो नर बैल को खस्सी अर्थात् बधिया करता है और बाँझ गौ को हल में जोतता है वह महानर्क में प

हता है (स) अच्छा जो भूलकर ऐसा कर दें (गो) तो वह चान्द्रायण व्रत करै ऐसा पराशरजी लिखते हैं —

वृषभन्तु समुत्सृष्टं कपिलाञ्चापि कामतः ।
योनयत्वाहलैकुर्य्यात् व्रतं चान्द्रायणं द्दमिति ॥

अर्थ जो गाय सांड को भूलकर हल गाडी में जोत दे तो वह चन्द्रायण व्रत करे (स) अच्छा हल में गाय को जोतने का तो ऐसा दण्ड है और जो गाय को वधिकों के हाथ बेंच देते हैं उनको क्या दण्ड है (स) * जो भूलकर बेंच दे तो उसका प्रायश्चित है परन्तु जो जानकर बेंचता है वह साक्षात् बधिकही हो जाता है उसका प्रायश्चित नहीं हो सकता है देखो पराशरजी लिखते हैं—

---

* विष्णुधर्मोत्तरे —

विक्रयास्तु गवा रामनरकं प्रतिपद्यते ।

वशिष्टजी कहते हैं हे रामजी गौ को कभी न बेंचना चाहिये क्योंकि बेंचने से नर्क प्राप्त होता है ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्य्यं तासान्तु पालनम् ॥

इसलिये जिस प्रकार बने इनका पालन रक्षा करनी चाहिये ।

विक्रयं गोर्विनिमयं कृत्वा गोमांसखादके ।
व्रतं चान्द्रायणं कुर्य्यात् वधेमाज्ञाद्दधीभवेत् ॥

अर्थ जो भूलकर गाय बैल को मांसाहारी के हाथ बेच देवे तो वह चान्द्रायण व्रत करे और यदि मालूम हो जावे कि यह वध के लिये ले जाता है तो बेंचनेवाला भी पापी हो जाता है (म) खाली वध के हाथ बेचने सेही पाप लगताहै या, औरों के भी (गो) खाली बधिकही के हाथ बेंचने में पाप नहीं परन्तु इन ४ के हाथ बेंचने से पाप लगता है देखो महाभारत में लिखा है —

नवधार्थे प्रदातव्या न कीनाशे न नासके ।
गोजीवन च दातव्या तथा गौः पुरुषर्षभ ॥

अर्थ —(१) घातक, और (२) गौ से हल चलानेवाला, (३) गोमहात्म नहीं मानता, और (४) जो बैलों पर लादी लादता है इनके हाथ गाय बैल न बेंचना चाहिये।

(म) भाई सच पूछो तो हम यही कहेंगे कि गोहत्यारे हिन्दूही हैं क्योंकि अपने मजे के वास्ते सारा दूध गौ का दूह लेते हैं और बच्चा उसका भूख के मारे चिचियाता २ मर जाता देखो आजकल के बच्चे कैसे दुर्बल देखने में आते हैं (गो) शास्त्रकारों ने तो एक स्तन के दूध पीने की आज्ञा दी है अज्ञानता से यह ऐसा करते हैं सो उसका

फल भी वैसा ही पाते हैं कि जैसा गौ का बच्चा भूख के मारे चिचियाता २ मर जाता है ऐसेही इनके बच्चों की भी दशा होती है कि वह भी थोडे दिनों बाद दूध अन्न बिना भूखे मर जाते हैं (स) एकही स्तन का दूध पीने की कहां आज्ञा लिखी है (गो) देखो शिवपुराण धर्मसंहिता में यह वाक्य लिखा है—

स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारस्तृतीयकः ।
हन्त [वलिः] कारस्तथैवान्योधेन्वास्तनचतुष्टयम्॥
स्वाहाकारं ततोदेवाः स्वधां च पितरस्तथा ।
वषटकारं तथैवान्यो देवाभूतेश्वरास्तथा ॥
हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम् ।

अर्थ— पहला स्वाहाकार स्तन देवताओं के लिये है और दूसरा स्वधाकार स्तन पित्रों के लिये है और तीसरा वषटकार भूतों अर्थात गाय के बच्चों के लिये हैं और चौथा स्तन मनुष्यों के लिये है भावार्थ इसका यह है कि प्रथम स्तन का दूध देवकार्य में लगाना और दूसरा पितृकार्य में और तीसरे का बच्चे को छोड़ देना और चौथे अपने कार्य में लाना चाहिये (स) अच्छा आप इस सब पचड़े को छोड़ो और कुछ मुक्ति होने का भी यत्न करो (गो) भाई मुक्ति

मुसल्मान भाइयों से गोमित्र पण्डित जगतनारायण की प्रार्थना।

(ग़ज़ल)

करो मत ज़ुल्म बेचारों पै भाई। गरीबों की करो मुश्किल कुशाई॥ करो दूर अपने जी से बुग़ज़ कीना। रखो आईन सी दिल में सफाई॥ बनाओ लुत्फ उलफ़त अपना पैशा। जो है मज़ूर कुछ अपनी भलाई॥ दिलाज़ारी से कोसों दूर भागो। सताओ मत किसी के दिल को भाई॥ ज़रासी दुनयवी लज्जत के खातर। न काटो भाईयो गर्दन पराई॥ गऊ माता है जग में कामधेनू। खिलाती नित नये गोरस मिठाई॥ यही है बस सहारा जिन्दगी का। नहीं वाजिब है इससे कज अदाई। तिजारत में ज़राअत में सफ़र में। दिलोजा से यह होती है सहाई॥ ज़राटुक ग़ौर से सोचो तो जी से। यह क्या करती है हम से बेवफाई। तअस्सुब गोश्ये दिल से करो दूर। न बेरहमो से बन जाओ कसाई। बचाओ जान इसकी ताबे मकदूर। कि पावोगे मुहब गम से रिहाई॥ कहां की यह निकाली रस्मो आईन। इवज नेकी के करते हो बुराई। गजब है जो पिलावे दूध हमको। उसी पर हमकरें तेग आज़माई॥ करोगे रहम पावोगे जजाओ। है ईश्वर सर्वव्यापी और

न्याई। अर्ज सेवक की ये है मुसलमानो। करोगे जो भला होगी भलाई॥

(मौलवी साहब) गोसेवकजी आप गोरचा करना तो पुकारते हैं परन्तु आपही के हिन्दू भाई राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द इलम दोस्तम शहुर मवरिंख इतिहास तिमिरनाशक हिस्सा सेयम में लिखते हैं कि प्राचीन समय में हिन्दू गोमेध यज्ञ किया करते थे क्योंकि गोमेध का अर्थ ही गऊ मारना है यदि आपको शक हो तो शब्द कोष (लुगत) देखले (गो) मोलवीसाहब प्रथम तो राजा शिवप्रसाद हिन्दू धर्मावलम्बीही * नहीं जो उनकी पुस्तक को सत्य माने (दूसरे) राजा साहब से हम पूछते हैं कि आपने जो ऐसा अपनी पुस्तक में लिखा है क्या आप संस्कृत पढे हैं जो गोमेध का अर्थ गाय मारनही लिखते हैं ? तीसरे आपके गुरु का क्या नाम है जिसने आपको गोमेध का अर्थ गऊ मारनाही बताया है हा २ हमही भूल गये थे अब याद आया आपको * गौराग गुरु ने बताया होगा या उनकी पुस्तक में से लिया होगा।

(चौथे मोलवी साहब यदि राजा साहब का तीसरा हिस्सा सत्य होता तो सरकार इसको स्कूलों में पढाने से बन्द न करती। पाचवें यदि यह सत्य होता तो इसके खंडन

* डाक्टर मैक्समोलर साहब।

न्याई। धर्म सेवक की ये है मुसलमानी। करोगे जो भला होगी भलाई॥

(मौलवी साहब) गोसेवकजी आप गोरचा करना तो पुकारते है परन्तु आपही के हिन्दू भाई राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द इल्म दोस्तम शहुर मवरिंख इतिहास तिमरनाशक हिस्सा सेयम में लिखते हैं कि प्राचीन समय में हिन्दू गोमेध यज्ञ किया करते थे क्योंकि गोमेध का अर्थ ही गऊ मारना है यदि आपको शक हो तो शब्द कोष (लुगत) देखले (गो) मौलवीसाहब प्रथम तो राजा शिवप्रसाद हिन्दू धर्मावलम्बोही * नहीं जो उनकी पुस्तक को सत्य माने (दूसरे) राजा साहब से हम पूछते हैं कि आपने जो ऐसा अपनी पुस्तक मे लिखा है क्या आप सस्कृत पढे हैं जो गोमेध का अर्थ गाय मारनही लिखते हैं? तीसरे आपके गुरु का क्या नाम है जिसने आपको गोमेध का अर्थ गऊ मारनाही बताया है हा २ हमही भूल गये थे अब याद आया आपके * गौराग गुरु ने बताया होगा या उनकी पुस्तक मे से लिया होगा।

(चौथे मौलवी साहब यदि राजा साहब का तीसरा हिस्सा सत्य होता तो सरकार इसको स्कूलों में पढाने से बन्द न करती। पाचवें यदि यह सत्य होता तो इसके खडन

* डाक्टर मैक्समोलर साहब।

में चतुर्भुजमोक्षेदम पुस्तक न बनती, यस मोलवी साहब इस नेह्ी में राजा साहब के गोमेध लिखने को समझ जाइये छठे आपने जो शब्दकोष कि यारे कहा सो देखिये गोमेध दो शब्द हैं एक "गो" जिसके कई एक अर्थ हैं जिसका हाल हम पीछे लिख आये हैं और दूसरा है मेध. इसके भी कई एक अर्थ हैं (मौ) इन शब्दों के कई अर्थ हों इमको इससे कुछ प्रयोजन नहीं है हम केवल यही पूछते हैं कि गोमेध का अर्थ गऊ मारने का आपके ग्रन्थों से है वा नहीं इसको बताइये (गो) गोमेध का अर्थ गऊ मारना नहीं है (मौ) क्या गोमेध यज्ञ आपके यहां नहीं हुआ करता था (गो) गोमेध यज्ञ तो होता था परन्तु उसमें गऊ नहीं मारी जाती थी (मौ) यदि गऊ नहीं मारी जाती थी तो इस यज्ञ का नाम गोमेध क्यों हुआ (गो) इस यज्ञ का नाम गोध यज्ञ इसलिये हुआ कि इस यज्ञ में गौ का दान किया जाता था (मौ) दान किस शब्द का अर्थ लिया है (गो) मेध शब्द का (मौ) मेध का अर्थ तो हिंसा का है (मौ) यज्ञ प्रकरण में मेध का हिंसा अर्थ नहीं लिया जाता है क्योंकि यज्ञ मे हिंसा करने की आज्ञा नहीं है यज्ञ प्रकरण में मेध शब्द का अर्थ दान, और पवित्र का लिया जाता है देखो निघण्टु, में लिखा है 'मेध: यज्ञ नाम' निघण्टु, अ २ खं० १० अर्थात् नाम मेध. यज्ञ का है। देखो

और घी तेल और गोश्त बांटा गया। देखो इतिहासतिमिरनाशक हिस्सा तीसरा पत्रा २६ (गो) भाई यह भी बात राजा साहब ने झूठही लिखी है क्योंकि यदि ऐसा रामायण में होता तो राजा साहब ने प्रमाण क्यों नहीं दिया कि फलाने श्लोक में ऐसा लिखा है। देखो राजा दशरथ के मृत्यु समय के यह श्लोक हैं। रा०बा०अ०स०६६ श्लो०१४ - १६..

तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम्।
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम्॥
न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः।
सर्वज्ञाः कर्तुमीषुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम्॥
तैलद्रोण्यां शायितं तं सचिवैस्तु नराधिपम्।
हा मृतोऽयमिति ज्ञात्वा स्त्रियस्ताः पर्यदेवयन्॥

अर्थात् चतुर राज्याधिकारीयोंने राजाके शरीर को दुर्गन्धता इत्यादि दोषों से बचाने के लिये तेल के कुण्ड में रख राज अनुसार सब कर्मों को करने लगे फिर जब भरतजी आये।

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः।
प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित्॥
उद्धृत्य तैलसंसेकात् स तु भूमौ निवेशितम्।
आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम्।
संवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते।

आर्य्य लोग कभी मांस नहीं खाते थे (मो) यदि नहीं खाते थे तो प्रयाग में भरद्वाज के यहां भरतने क्यों मांस मद्य खाया पीया था देखो रामायण में लिखा है कि प्रयाग में भरद्वाज ने जब भरतजी की दावत की थी तब हिरन भेड़ी जंगली सूअर तीतर मोर इत्यादि का मांस खाने को दिया था और खाने के साथ नशैली शराबों का शुमार नथा ? देखो इतिहास तिमिरनाशक २खं ३५ पन्ना (गो) भाई भरतजीने तो न मांस खाया न मद्यपीया . हां भरद्वाज के यहां फल मूल अवश्य खायेथे देखो। रा० अ० ६१ श्लो१-२

कृतबुद्धिं निवासाय तत्रैव स मुनिस्तदा ।
भरतं कैकयीपुत्रमातिथ्येन न्यमन्त्रयत ॥
अब्रवीद्भरतस्त्वेनं नन्विदं भवता कृतम् ।
पाद्यमर्घ्यमथातिथ्यं वने यदुपपद्यते ॥
अथोवाच भरद्वाजो भरतं प्रहसन्निव ।
जाने त्वां प्रीतिसंयुक्तं तुष्येस्त्वं येन केनचित् ।
सेनायास्तु तवैवास्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम्
मम प्रीतिर्यथा रूपा त्वमर्हो मनुजर्षभ ॥

अर्थ—मुनि ने भरत को राजा दशरथ का पुत्र जान उन के लिये भी अर्घ पाद्य से पूज कर पीछे भोजन के लिये फलों को ... पूर्वक उनके ... का कुशल प्रश्न किया

(मो) यद्यपि भरतजी ने मांस मद्य नहीं खाया पीया परन्तु

मुनि ने शिक्षा या तो? क्या मुनी ने जीव मारने थी हत्या न लगी होगी – क्योंकि जब हर तरह के माल बनाये गये थे तो जरूरही जीव मारे गये होंगे इससे पाया गया कि मांस पहले खाते थे (गो) मुनीजीने तो न जीव मारे थे और न फौज ने मांस खाया था (सो) यदि जीव न मारे थे तो माल हर तरह का कहां से आगया था (गो) भाई यह मुनीने भरतजी को अपनी करामात दिखाई थी कि राम भाउ (परमेश्वर) बंदगी करने वाले सौकुछ चाहें पैदा कर सकते हैं ।। इस लिये तुम राम भक्तमें रहना। आपही सोचे कि एक घड़ी भर में हर तरह की चीजे मुनी कहांसे पैदा करसक्ते थे । क्योंकि मुनीके पास तोकुछ भी नहीं था जो इतनी बडी फौज को खिला पीला सकते, यह केवल खुदाकी इबादत का फल ऋषि के पास था कि एक घडी में हरतरह की चीजे तैयार करदी थीं, देखो

अग्निशालां प्रविश्याथ पीत्वापःपरिमृज्य च ।
आतिथ्यस्य क्रियाहेतो विश्वकर्माण माह्वयत ।
आह्वये विश्वकर्माणं मर्वत्वष्टारमेवच ।
आतिथ्यंकर्तु मिच्छामि तत्र मे संविधीयताम् ॥
आह्वये लोकपालांस्त्रीन्देवान् शक्रपुरोगमान् ।
आतिथ्यं कर्तु मिच्छामि तत्र मेसंविधीयताम ।

अर्थ – मुनि अपनी अग्निशाला में जाय आचमन कर अतिथि सत्कार के हेतु विश्वकर्मा का आवाहन करने के लि

गोसेवक।

हिन्दी भाषा का गोरक्षा सम्बन्धी साप्ताहिकपत्र

यह परमोत्तम साप्ताहिक पत्र बनारस से हर वृहस्पति वार को प्रकाशित होताहै। वार्षिक अगाम डाक व्यय सहित १॥) रु० लिया जाता है उद्देश्य इस पत्र का हिन्दी भाषा और गोरक्षा की उन्नती करना है।

इस में गोरक्षा के उत्तमोत्तम प्रस्ताव गो द्रोही इसाई और मुसल्मानों को मुंह तोड़ जवाब और ततस म्बन्धी राजनैतिक विषयों परलीव समालोचना और बनारस और देश देशान्तर के प्रामाणिक गो विविध समाचार भी रहते हैं।

और उत्तमता तो यह है कि इसके अध्यक्षो को इससे लाभ से कुछ मतलब नहीं है इसका खर्च बाद दे दे जो कुछ बचता है वह गोरक्षा में लगा दिया जाता है इस लिये इस के पाठकों को दोहरा नफा है, एक तो समाचार पत्र (अखबार) पढ़ने से, भावे और दूसरे पैसा अच्छे कामों में लगे यदि हमारे गिरधारी गोरक्षक हिन्दू महाशय इस पत्र से भी वंचित रहेंगे तो सिवाय उनके दुर्भाग्य के और क्या कहा जासकता है।

बा० प्रभु दयाल शर्मा सहकारी प्रबन्ध कर्ता

गोसेवक प्रेस

बनारस सिटी।

इन पुस्तकों को शीघ्रही देखिये

[गोरक्षा इसे महत्म कार्य कोइ काके भजनयही देखिये दाम

[२] बालशिक्षादूसरा भाग — यह बड़ा उपकारी है

[३] मुहम्मदपरीक्षा। इसको जरूरही देखिये

[४] भारत डिमडिमा नाटक रोना और गाना हसना

[५] रगदार गऊ की तसवीर

[६] इसाईमतपरीक्षा यह ईसाइयोकामुंहबंदकरती है

[७] ईसूपरीक्षा,

[८] हिन्दूओं का वर्तमानीधर्म्म

[९] भजनसंग्रह प्रथम भाग

[१०] दूसरा भाग

[११] हरगंगा

[१२] काशीका नकशा

[१३] बालशिक्षा प्रथम भाग

[१४] गऊकीनालिश

[१५] गाजीमियाँ की पुजा

[१६] गऊमाता की तसवीर सादी

[१७] गोविलाप गऊ ऐसा विलाप करती है

[१८] गौ पुकार इस मे राजा महाराजा सपादक और हर एक आर्य्य हिन्दू को रक्षा के लिये पुकारती है

[१९] गौ पुकार चालीसी

[२०] गौ गोहार कबीत

[२१] गोहित कारी भजन भाग पहीला

[२२] दुसरा भाग

इन पुस्तकों के सिवाय और भी हर तरह की लखनऊ कलकत्ता बम्बई काशी आद की पुस्तकें मिल सक्ती हैं।

महकारी प्रबंध कर्त्ता — बाबू प्रभुदयाल शर्मा ।

गोसेवक यन्त्रालय बनारस सिटी।